विवेक शिखा

वर्ष—१० अप्रैल—१९९१ अंक ४

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी—उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा—छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव शंखपाल—(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, अमरौति नैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री मृत्युनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक मनिन, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री समन कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—दुदवा (उ. प्र.)
८४. श्री श्री एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. के. हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता - पडरौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला—जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल सुंदारे—पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा—अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सराफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. शारदापीठ विद्यालय—इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१०　　　१९९१—अप्रैल　　　अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

लज्जा, घृणा और भय, इन तीनों में किसी के रहते ईश्वर नहीं मिलते। लज्जा, घृणा, भय, जाति-अभिमान, गुप्त रखने की इच्छा, ये सब पाश हैं। इन सब के चले जाने से जीव की मुक्ति होती है।

(२)

पाशों में जो बँधा है, वह जीव है और उनसे जो मुक्त है, वह शिव है। भगवत्प्रेम दुर्लभ वस्तु है। पहले-पहल, पति के प्रति पत्नी की जैसी निष्ठा होती है वैसी ही यदि ईश्वर के प्रति हो तो ही भक्ति होती है।

(३)

पान खाना, तम्बाकू पीना, तेल मालिश करना—इनमें दोष नहीं है। केवल इन्हीं का त्याग करने से क्या होगा ? कामिनीकांचन के त्याग की आवश्यकता है। वही त्याग है। गृहस्थ लोग बीच-बीच में निर्जन स्थान में जाकर साधन भजन कर भक्ति प्राप्त करके मन से त्याग करें।

(४)

ठीक बिश्वास के द्वारा ही उन्हें (ईश्वर को) प्राप्त किया जा सकता है। और पूरा विश्वास करने पर और भी शीघ्र प्रगति होती है। गौ यदि चुन-चुनकर खाती है तो दूध कम देती है, सभी प्रकार के घास पत्ते खाने पर वह अधिक दूध देती है।

ब्रह्मस्तोत्रम्

— महानिर्वाण तंत्र

ॐ नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय
नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥ १

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत् कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत् कर्तृ पातृ प्रहर्तृ
त्वमेकं परं निष्कलं निर्विकल्पम् ॥ २

भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं
परेषां परं रक्षकं रक्षकानाम् ॥ ३

परेश प्रभो सर्वरूपाविनाशि-
न्ननिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकव्यक्त तत्व
जगद्भासकाधीश पायादपायात् ॥४

त्वदेकं स्मरामस्तदेकं भजाम-
स्तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतः शरेण्यं व्रजामः ॥५

पंचरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥६

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला—
बलराम भवन में सात दिन

लेखक – स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका—डॉ० नन्दिता भार्गव

उत्तर कलकत्ता समकालीन कलकत्ते की संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। उत्तर कलकत्ते के कुछ मुहल्ले भगवान श्रीरामकृष्ण के चरण स्पर्श से पवित्र हुए थे। उस समय श्रीरामकृष्ण भावधारा को केन्द्रित कर इस अंचल में एक भक्त-मण्डली गठित हो गयी थी। इस विषय में श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग के लेखक स्वामी सारदानन्द का विवरण अनुसरण के योग्य है "भक्तों का हृदय श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन के निमित्त सर्वदा इतना उन्मुख रहता था कि यद्यपि किसी कार्यवश दक्षिणेश्वर में जाना उनके लिए सम्भव नहीं होता था फिर भी एक दूसरे के घर पर जाकर उनकी चर्चा में इस प्रकार आनन्द अनुभव किया करते थे कि किसी एक को भी श्रीरामकृष्ण के आगमन का समाचार किसी तरह विदित होते ही तत्काल ही वह, बिना किसी प्रयास के ही अनेक व्यक्तियों में परस्पर फैल जाता था। श्रीरामकृष्ण देव की शक्त से भक्तों में आपस में इस प्रकार का एक अनिर्वचनीय प्रेम बन्धन था कि पाठकों को समझाना हमारे लिए कठिन है। कलकत्ते में बाग बाज़ार, सिमला तथा अहीरीटोला मुहल्ले में उनके अनेक भक्त रहते थे। इसलिए इन तीन स्थानों में ही बहुधा श्रीरामकृष्ण का आगमन होता था। उसमें भी बाग बाज़ार में अधिकतर वे आया करते थे।"[1]

कहा जाता है कि केवल बाग बाजार में ही उनके तीस से अधिक भक्त रहते थे। भक्त बलराम बसु ५७ रामकान्त बसु स्ट्रीट (वर्तमान में ७ गिरीश एवेन्यू) में रहते थे। बलराम के चचेरे भाई हरिवल्लभ बसु ने इस भवन को बनवाया था। वे कटक में वकालत करते थे तथा उन्हीं की इच्छानुसार बलराम सपरिवार यहां अवस्थान कर रहे थे। बलराम का घर श्रीरामकृष्ण भक्तों में भलिभाँति परिचित था। श्रीरामकृष्ण के सौ से अधिक चरण स्पर्शों से यह भवन पवित्र हो गया है।[2] वर्तमान में यह "बलराम-मन्दिर" के नाम से विख्यात है। बलराम बसु के आराध्य श्रीरामकृष्ण इस मन्दिर के उपास्य देवता हैं।

बलराम श्रीरामकृष्ण के प्रिय गृहस्थ भक्त तथा उनके एक रसददार भी थे। श्रीरामकृष्ण ने भावावस्था में बलराम को चैतन्य की कीर्तन-मण्डली में देखा था। उनके घर के बारे में श्रीरामकृष्ण वचनामृत के रचयिता ने लिखा है, "धन्य बलराम। तुम्हारा घर आज ठाकुर का प्रधान कार्य क्षेत्र हो रहा है। कितने ही नये भक्तों को आकर्षित कर प्रेम से बाँध लिया। साथ ही वे कितनी ही बार ईश्वरीय भाव मग्न होकर नाचे और गाये मानो श्रीगौरांग श्रीवास-मन्दिर में प्रेम का हाट-बाज़ार स्थापित कर बैठे हों।

"दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में बैठे हुए रोते हैं। अपने अन्तरंगों को देखने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। रात को नींद नहीं आती। कहते हैं,

"माँ उसे बड़ी भक्ति है, उसे तुम खींच लो। माँ उसे यहाँ ले आओ। अगर वह न आ सके तो माँ, मुझे ही वहाँ ले चलो। मैं उसे देख लूं।" इस लिए बलराम के यहाँ दौड़ आते हैं। लोगों से कहते हैं, "बलराम के यहाँ श्रीजगन्नाथ जी की सेवा होती है, उसका अन्न बड़ा शुद्ध है।" जब आते हैं तब उसी समय बलराम से न्योता देने के लिए कहते हैं। कहते हैं, "जाओ-नरेन्द्र को, भवनाथ को, राखाल को न्योता दे आओ। इन लोगों को खिलाना नारायण को खिलाने के समान है। ये ऐसे वैसे नहीं है, ये ईश्वर के अंश से पैदा हुए हैं। इन्हें खिलाने से तुम्हारा बहुत कल्याण होगा।"[3] बलराम के घर कितनी ही बार "प्रेम के दरबार में आनन्द मेला" लगा। श्रीरामकृष्ण को केन्द्रित कर अंतिम बार का यह आनन्द मेला केवल सात दिन का ही था-२६ सितम्बर १८८५ से २ अक्टूबर १८८५ ई० तक। इस निबन्ध में उन्हीं सात दिनों का एक संक्षिप्त चित्रांकन किया गया है।

श्रीरामकृष्ण सबेरे ही दक्षिणेश्वर छोड़कर कलकत्ते आ गये। भक्तों ने उनके रहने के लिए एक छोटा सा मकान किराये में लिया था, ठाकुर वहीं आये। यह बाग बाज़ार "राजा का घाट" की पहली वाली गली में एक नया दो मंजिला मकान था। शनिवार का दिन था, तारीख २६ सितम्बर १८८५ ई०। इस विषय में स्वामी सारदानन्द ने लिखा है, "भागीरथी के तट पर काली मन्दिर के बहुत बड़े बाग में खुली हवा में रहने में अभ्यस्त ठाकुर ने उस छोटे से मकान के भीतर प्रविष्ट होते ही कहा, कि वे वहाँ नहीं रह सकते और उसी समय पैदल चलकर रामकान्त बसु स्ट्रीट में बलराम बसु के भवन में चले आये।[4] स्वामी अद्भुतानन्द ने भी कहा है, बाग बाज़ार में जिस मकान को किराये में लिया गया था, वह ठाकुर को पसन्द नहीं आया। उन्होंने कहा, "इतना छोटा सा घर, इसमें रहने से दम घुट जायेगा। तुम लोग बापू कोई दूसरा मकान देखो।"[5] दूसरा कोई उपाय न होने के कारण श्रीरामकृष्ण बलराम भवन में आ गये। लीलाप्रसंग के लेखक ने भक्त बलराम के घर को श्रीरामकृष्ण का "दूसरा किला" के नाम से उल्लेख किया है।

श्रीरामकृष्ण-पूंथी के लेखक ने भी कहा है—

भवनेर महिमा किवा ना जाय वर्णन।
गौर-अवतार जेन श्रीवास- प्रांगन ॥

जगन्नाथ प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित घरे।
भोग-राग निति निति अति प्रीति भरे ॥

मंगल-उत्सव ध्वनि उठे दिवारात्र।
वसूर भवन ठिक जगन्नाथ क्षेत्र ॥

(भवन की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। गौर अवतार के समय जैसे श्रीवास का प्रांगण था। घर में जगन्नाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। बड़े प्रेम पूर्वक भगवान की सेवा होती थी। दिन रात मंगल उत्सव की ध्वनि गूंजती रहती। वसु का भवन मानो जगन्नाथ क्षेत्र था।)

सुबह के सवा नौ बजे थे। बलराम ने श्रीरामकृष्ण का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। आपके आने की खबर मोहल्ले में फैल गयी। खबर पाते ही गिरीश चन्द्र घोष आ गये। "जैसे ही गिरीश ने उस मकान के बारे में बात प्रारम्भ की तो श्रीरामकृष्ण कह उठे, "यहाँ पर घर जैसा है।" गंगा के तट पर स्थित दुर्गाचरण मुखर्जी स्ट्रीट के मकान के बारे में बोले, "(वहाँ) जाने की इच्छा नहीं है।" गिरीश को लक्ष्य करके आपने और भी कहा, "मानो गंगायात्री।"[6]

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर से चले आये हैं। इस बात पर श्रीरामकृष्ण ने कहा "दो बातों के लिए चला आया हूँ--वहाँ के कमरेमें बहुत सीलन आ गयी थी – दूसरी बात शौच में जाने की असुविधा थी।"

चिकित्सक की सलाह के अनुसार ठाकुर ने दवा से काफी समय तक कुल्ला किया। कहने लगे, "और दो, और दो।"

कुछ देर बाद आपने मास्टर महाशय को कहा, "खाँसी बहुत बढ़ गयी है।" इस बार बलराम के घर श्रीरामकृष्ण की यह पहली रात थी। उस रात मास्टर महाशय भी बलराम के घर सो गये। वे ठाकुर के कमरे में ही सोये।

श्रीरामकृष्ण के इस समय के लीला विलास के रस का आनन्द लेने के लिए पाठकों को इस समय की पृष्ठभूमि से अवगत होना आवश्यक है।

जब पुरुषोत्तम संसार मंच पर अवतीर्ण होते हैं तो उनके आचरण में लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही भावों का मिलन देखने को मिलता है — धूप-छाया की भाँति ही दैवी तथा मनुष्य भाव का मिलन। वे मनुष्य के साथ निवास करते हैं फिर भी अन्तराल से दिव्य भाव प्रकट होता रहता है। साधारण मनुष्य उस दिव्य भाव के प्रकाश को समझ नहीं पाता है, फिर भी वह आश्चर्यचकित हो जाता है। भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन के इस भाग में दिव्य भाव असाधारण रूप से विकसित हुए थे।

ठाकुर गले में दर्द का अनुभव कर रहे थे। आरम्भ में बहुतों ने इस कष्ट को महत्व नहीं दिया। क्योंकि लोग यह सोचते थे कि ठण्ड लग जाने से ही दर्द हो रहा है। परन्तु चिकित्सकों ने परीक्षा करके निश्चय किया कि आपको "क्लर्जीमेंस थ्रोटसोर" हुआ है। बहुत अधिक बात करने से ही यह व्याधि हुई है। उन लोगों ने औषधि तथा सेवा की व्यवस्था बतला दी। श्रीरामकृष्ण ने समस्त नियमों और व्यवस्थाओं की पाबंदी स्वीकार कर ली परन्तु दो बातों में व्यतिक्रम होने लगा। प्रगाढ़ ईश्वर प्रेम तथा ससार-संतप्त मनुष्यों के प्रति करुणा से विवश होकर वे समाधि और वाक्य-संयम के प्रति सावधानी रखने में सफल नहीं हुए।"[8] इसके उपरान्त दक्षिणेश्वर में भक्तों की भीड़ बढ़ती चली जा रही थी। स्वामी सारदानन्द ने लिखा है, 'गले में प्रथम बार पीड़ा अनुभव करने के कुछ दिन पश्चात् एक दिन भावाविष्ट होकर उन्होंने जगत्माता से कहा था, 'क्या इतने आदमियों को लाना चाहिए? एकदम भीड़ लगा दी है। नहाने खाने तक का समय नहीं मिलता है। एक तो फूटा ढोल (अपने शरीर को दिखाकर) दिन रात इसे बजाने पर यह कितने दिन टिकेगा।'[9]

प्रारम्भ में डाक्टर राखाल घोष ने कुछ समय तक चिकित्सा की। उनके असफल होने पर चिकित्सा का दायित्व प्रसिद्ध "होमियोपैथ' डॉ॰ प्रतापचन्द्र मजूमदार को सौंपा गया। बीच में किसी एक दिन भगवान पुद्र ने आकर उनकी परीक्षा की थी।[10] इन्हीं दिनों एक दिन डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार ने अपने चिकित्सालय में ठाकुर की कण्ठ-पीड़ा की जाँच की थी। डाक्टर मजूमदार के चिकित्सा से ठाकुर को आरम्भ में कुछ लाक्षणिक लाभ होने के उपरान्त वह भयंकर रोग अपनी स्वाभाविक तीव्रगति से बढ़ता चला गया। इतने अधिक अस्वस्थ होते हुए भी श्रीरामकृष्ण ने एक दिन के लिए भी कीर्तन करना या उपदेशादि देना बन्द नहीं किया। जिस दिन बहुत अधिक मतवाले हो जाते, उस दिन वेदना भयंकर बढ़ जाती। परिणामस्वरूप आप अशेष कष्ट पाते थे। परन्तु पल भर में ही सब कुछ भुला कर आप पहले की भाँति ही आनन्द मनाते थे। पानीहाटी के चिउड़ा महोत्सव में जाकर श्रीरामकृष्ण संकीर्तन में मतवाले हो गये और बारम्बार भाव-समाधि में निमग्न हो रहे थे। इससे आपके गले की वेदना बढ़ गयी। एक दिन तो गले से रक्त भी निकला, यह देख भक्तगण भय से आतंकित हो गये। भक्तों के ही अनुरोध से श्रीरामकृष्ण चिकित्सा के लिए कलकत्ते आने को सहमत हो गये।[11] आपके निर्देश के अनुसार बाग बाजार मोहल्ले में गंगा के तट पर मकान किराये में लेना तय किया गया। रामलाल ने पंचांग देखकर बतलाया कि (जिस दिन पंचांग देखा उसके) दो

दिन बादअर्थात् शनिवार को तीन बजे के पश्चात् स्थानान्तरण के लिये समय अनुकूल है।

बलराम के घर आने के साथ ही श्रीरामकृष्ण के दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ गयी। वह स्थान चिकित्सा क्षेत्र न रह कर उत्सव क्षेत्र में बदल गया। 'पूंथी'' में भक्त अक्षय कुमार सेन लिखते हैं —

श्रीप्रभुर आगमन बसुर भवने।
साधारणें राष्ट्र कथा होल काने काने ॥
लोकारण्य होल लोके भवन-भीतरे।
अगणन साध्य कार संख्या तार करे ॥
प्रभु जे पीड़ित एत केओ नाहीं भावे।
दरशने सबे महानन्द-नीरे डूबे ॥[१२]

(श्री प्रभु बसु के घर आये हैं। यह बात सर्व साधारण में फैल गयी। भवन जन समागम से भर गया। इतने लोग आने लगे कि कौन उनकी गिनती रखता। किसी ने इसका ध्यान नहीं रखा कि प्रभु इतने पीड़ित हैं। उनके दर्शनसे सभी मानो महानन्द रूपी जल में डूब गये) इस प्रसंग में स्वामी सारदानन्द ''लीला प्रसंग'' में कहते हैं, 'परिचित अपरिचित लोग दल के दल उनके दर्शनार्थ बलराम भवन पर उपस्थित होने लगे। बलराम का घर एक उत्सव क्षेत्र की तरह आनन्दमय हो गया। डाक्टर के निषेध और भक्तों की करुण प्रार्थना से समय समय पर मौन रहने पर भी श्रीरामकृष्णदेव जिस उत्साह से लोगों को धर्मोपदेश देते थे, उससे प्रतीत होता था मानो इसी उद्देश्य से वे यहां आये हुए हैं, मानो दक्षिणेश्वर तक पहुँचना जिन लोगों के लिए सुगम नहीं है उन्हें धर्मालोक प्रदान करने के लिए उनके द्वार पर स्वयं उपस्थित हुए हैं। प्रातः काल से लेकर भोजनकाल पर्यन्त और भोजन के उपरान्त एक दो घंटे विश्राम के पश्चात् रात्रि के भोजन तथा शयन तक प्रतिदिन उन्होंने उस सप्ताह के भीतर अनेक व्यक्तियों के जीवन के जटिल प्रश्नों का समाधान कर दिया था। विविध प्रकार के भगवत प्रसंग से अनेक लोगों को अध्यात्मिक मार्ग में आकृष्ट किया था और भजन कीर्तन आदि के श्रवण से गम्भीर समाधि राज्य में प्रविष्ट होकर अनेक धर्मपिपासुओं के हृदय को शांति और आनन्द की तरंगों से प्लावित कर दिया था।[१३]'

(क्रमशः)

---

१. स्वामी सारदानन्द श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, द्वितीय खण्ड, पृ० ६६-६७।
२. १ मई, १८९७ में इसी भवन में स्वामी विवेकानन्द के सभापतित्व में ठाकुर के त्यागी और गृहस्थ भक्तों की सभा में श्रीरामकृष्ण मिशन की शुरुआत हुई थी।
३. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तीसरा भाग पृ० ६४।
४. स्वामी सारदानन्द: श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, तीसराखण्ड पृ० २१९।
५. चन्द्र शेखर चट्टोपाध्याय: श्री श्रीलाटू महाराजेर स्मृति कथा (बंगला) पृ० २३४।
६. उस समय की प्रथा के अनुसार पारलौकिक मंगल के लिए मरणासन्न व्यक्ति गंगाजल स्पर्श करते हुए प्राण त्यागने की इच्छा से गंगा तट पर खड़ा रहता था। यहां श्रीरामकृष्ण इसी प्रकार के गंगायात्रियों के बारे में कह रहे हैं। किराये के मकान को देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'क्या उन्होंने मेरी गंगायात्रा करवायी है। मैं इस मकान में नहीं रह सकता।'' (रामचन्द्र दत्त—श्रीरामकृष्ण परमहंस देवेर जीवन वृतान्त १७ वां संस्करण पृ० १६५।)
७. अक्षय कुमार सेन ने पूंथी में लिखा है.. काली मंदिर में फूलों का बगीचा गंगा तट पर था। श्रीप्रभु के मंदिर के पश्चिम की ओर केवल छः हाथ की दूरी पर था। माटी दिखाई नहीं देती

थी। पानी ऊपर तक आ गया था। इस कारण प्रभु का मंदिर अधिक जल के कारण सीलन भरा सा रहती था। हवा में नमी रहता थी। कमरे में सदा ही सीलन रहती थी।

जीवन वृतान्त के लेखक ने लिखा है—आखिरी श्रावण के दिन थे। गंगा का पानी बढ़ जाने से बाग के ऊपर तक पानी आ गया था—वह सीलन उनके लिए नितान्त ही हानिकारक थी।...।"

८. स्वामी सारदानन्द, श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग। तीसरा खण्ड पृ० २१२।

९. वही पृ० २१४।

१०. बैकुण्ठ नाथ सान्याल के अनुसार श्रीरामकृष्ण की चिकित्सा के लिए इन दिनों डॉ० निताई हालदार दक्षिणेश्वर आये थे। (देखें श्री श्रीरामकृष्ण लीलामृत, प्रथम संस्करण, पृ० १७५) दक्षिणेश्वर छोड़ने के तीन दिन पहले, अर्थात्, २७ सितम्बर को श्रीरामकृष्ण कलकत्ते के तालतला मुहल्ले के डाक्टर दुर्गाचरण बन्धोपाध्याय के पास भी गये थे।

११. जीवन वृतान्त के अनुसार स्थान परिवर्तन के प्रस्ताव पर श्रीरामकृष्ण 'महाआनन्दित' हुए थे।

१२. श्री श्रीरामकृष्ण पूंथि, व ९वां संस्करण, पृ० ५८४, रामचन्द्र दत्त ने भी लिखा है कि यह बात फैल गयी कि श्रीरामकृष्ण कलकत्ते आये हैं। बलराम का घर मानो उत्सव क्षेत्र बन गया।

१३. स्वामी सारदानन्द, श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, तीसरा खण्ड, पृ० २२०।

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा

स्वामी शशाङ्कानन्द, प्राचार्य
रामकृष्ण मिशन समाज सेवक
शिक्षण मन्दिर
बेलूड़मठ, हावड़ा

व्यवहार में अनेक गुरु हो सकते हैं परन्तु परमार्थ में केवल एक ही गुरु होना चाहिए। आध्यात्मिक गुरु या पारमार्थिक गुरु एक ही होते हैं और उन्हें ही सद्गुरु कहते हैं। वे सत्य तत्त्व के उपदेशक, सहृदय तथा दयाशील होते हैं और बड़े भाग्य से ही प्राप्य हैं। साधारण गुरु व्यावहारिक शिक्षा दे सकते हैं किन्तु वे शिष्य के अज्ञान, मोह और भवताप को नहीं हर सकते—शिष्य को पापमुक्त नहीं कर सकते। यह शक्ति तो केवल सद्गुरु में ही होती है।

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं, "सच्चा गुरु वही है, जो इस मायारूपी संसार के पार ले जाता है, जो कृपा करके सब मानसिक आधि-व्याधि विनष्ट करता है। सच्चा गुरु वही है, जिसके द्वारा हमको अपना आध्यात्मिक जन्म प्राप्त हुआ है।... धर्म की आँखें खोलने वाला ही गुरु होता है।

"एक सच्चा गुरु शिष्य से कहेगा जा और अब पाप न कर', और शिष्य अब पाप नहीं कर सकता—उस व्यक्ति में पाप करने की शक्ति नहीं रहती।" —(वि० सा० ३)—१९८)

यदि कोई सोचे कि ग्रन्थ या शास्त्र के अध्ययन से ही वह आत्मज्ञान हो जाएगा तो स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "मैंने बाइबिल और इस प्रकार के सब ग्रन्थ पढ़े हैं; वे अद्भुत हैं। पर जीवन्त शक्ति तुमको पुस्तकों से नहीं मिल सकती। वह शक्ति,

जो एक क्षण में जीवन्त प्रकाशवान् आत्माओं से ही प्राप्त हो सकती है, जो समय समय पर हमारे बीच में प्रगट होती रहती है। केवल वे ही गुरु होने के योग्य हैं।" - (वि०सा० ३—१९८)

सद्गुरु की शक्ति इतनी महान होती है कि उसकी उपास्थिति मात्र से शिष्य के पाप-ताप मोह और संशय नष्ट हो जाते हैं, स्वामी विवेकान्दजी का कथन है, "गुरु एक सोलह वर्ष का बालक था, उसने एक अस्सी वर्ष के वृद्ध को शिक्षा दी। गुरु की शिक्षण विधि मौन थी; और शिष्य की सब शंकाओं का सदा के लिए समाधान हो गया। यह है गुरु।"

श्री रामकृष्ण देव ने भी कहा है, 'यदि सद्गुरु हो तो जीव का अहंकार तीन ही पुकार में दूर होता है। गुरु कच्चा हुआ तो गुरु की भी दुर्दशा और शिष्य की भी। शिष्य का अन्धकार दूर नहीं होता और न उसके भव-बंधन की फाँस ही कटती है।

रामचरितमानस में ऐसे सद्गुरु की वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार की है।

वंदउँ गुरुपदकंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर॥

—"मैं उन गुरु महाराज के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नररूप में श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समूह हैं।"

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में मर्यादा पुरुषोत्तम् भगवान् श्रीराम कहते हैं :

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नरतनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

—"चोरासी लाख योनियों में भटकते हुए जीव पर कभी करुणा करके अहेतुकी करुणासिंधु सनेह वश मानव शरीर देते हैं। यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से) तारने के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार हैं। इस प्रकार दुर्लभ साधन सुलभ होकर उसे (भाग्यशाली जीव को) प्राप्त हो गए हैं।"

सद्गुरु होने की योग्यता बिरले व्यक्ति ही रखते हैं पर पृथ्वी इनसे शून्य नहीं होती। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है, "इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे गुरु इस संसार में कम मिलते हैं; पर ऐसा भी नहीं है कि जगत् उनसे बिल्कुल शून्य हो। जिस क्षण यह संसार ऐसे गुरुओं से रहित हो जायगा, यह घोर नरक बनकर झड़ जायेगा। ये गुरु ही मानव जीवन के सुन्दर तथा अनुपम पुष्प हैं, जो संसार को चला रहे हैं। जीवन के इन हृदयों के द्वारा व्यक्त शक्ति ही समाज की मर्यादाओं को सुरक्षित रखती है।" - (वि०सा० ९-२९)

श्रीरामकृष्णदेव के अनुसार सद्गुरु तीन प्रकार के होते हैं। वे कहते थे, "वैद्य तीन प्रकार के होते हैं —उत्तम मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी देखकर दवा की व्यवस्था करके चला जाता है, रोगी से केवल इतना ही कह जाता है कि दवा खाते रहना, वह अधम श्रेणी का वैद्य है।

'उसी प्रकार कुछ आचार्य केवल उपदेश दे जाते हैं परन्तु उस उपदेश से शिष्य को अच्छा फल प्राप्त हुआ या बुरा, इसका फिर पता नहीं लेते।

'दूसरी श्रेणी के वैद्य ऐसे होते हैं जो दवा की व्यवस्था करके रोगी से दवा खाने के लिए कहते हैं। अगर रोगी नहीं खाना चाहता, तो उसे तरह-तरह से समझाते हैं। वह मध्यम श्रेणी का वैद्य है। उसी प्रकार वे आचार्य भी मध्यम श्रेणी के होते हैं जो शिष्य को उपदेश करते हैं और तरह-तरह से शिष्य को तदनुसार आचरण करने के लिए समझाते भी हैं।

'अन्तिम और उत्तम श्रेणी के वैद्य वे हैं जो मीठी बातों से न मानने पर बल का भी प्रयोग करते हैं। जरूरत होती है तो रोगी की छाती पर घुटना रखकर जबरन दवा पिला देते हैं। उसी प्रकार उत्तम श्रेणी के आचार्य भी हैं। ईश्वर के मार्ग पर लाने के लिए वे शिष्यों पर बल तक का प्रयोग करते हैं।

मानसकार ने भी बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा;

सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

—अर्थात् मन्त्री, वैद्य और गुरु ये तीन यदि भय या आशा से उचित उपदेश न दें तो राज्य, शरीर और धर्म—इन तीन का शीघ्र नाश हो जाएगा।

अतः मन्त्री, वैद्य और गुरु को उचित सलाह देनी चाहिए चाहे उसे उसके लिए प्राण ही क्यों न गवाँना पड़े। उत्तम श्रेणी के गुरु तो वे हैं जो शिष्य से जबरदस्ती साधन करा लेते हैं।

तुम्ह त्रिभुवन गुर वेद बखाना

उपर्युक्त गुरुओं से परे गुरुओं की और एक श्रेणी होती है जो मानवमात्र पर अनुकम्पा करने के लिए इस पृथ्वी पर आते हैं। वे गुरुओं के भी गुरु होते हैं - स्वयं भगवान् मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं। वे लोक-शिक्षा के लिए आते हैं और युगपरिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं। उन्हें हम भगवदावतार कहते हैं। जैसे भगवान्-राम, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, बुद्धदेव, श्रीरामकृष्ण देव। श्रीराम कृष्ण ने स्वयं ही कहा है:—

"हर एक गुरु नहीं हो सकता। लकड़ी का गोला पानी में स्वयं भी बहता हुआ चला जाता है और अनेक जीव-जन्तु भी उसपर चढ़कर जा सकतेहैं। पर मामूली लकड़ी पर चढ़ने से लकड़ी भी डूब जाती है और जो चढ़ता है वह भी डूब जाता है। इसलिए ईश्वरयुग-युग में लोक-शिक्षा के लिए गुरु रूप में स्वयं अवतीर्ण होते हैं। सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।"

मानस में आदि गुरु भगवान् शंकर को गुरु रूप में प्राप्त कर माँ पार्वती जी ने कहा था: —

तुम्ह त्रिभुवन गुर वेद बखाना।
आन जीव पाँवर नहीं जाना॥

कृपा-सिंधु नररूप हरि

श्री रामकृष्ण देव कहते हैं, "एक सच्चिदानन्द को छोड़कर और कोई गुरु नहीं है, इनके बिना कोई उपाय नहीं है। एकमात्र वे ही भवपार ले जाने वाले हैं।"

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है, "मनुष्य में वह शक्ति ही कहाँ कि वह दूसरे को संसार बन्धन से मुक्त कर सके? यह भुवन मोहिनी माया जिनकी है वे ही इस माया से मुक्त कर सकते हैं। सच्चिदानन्द को छोड़कर और दूसरी गति है ही नहीं।"

तब क्या हम मनुष्य गुरु को अस्वीकार कर दें और अवतार रूप में आए हुए सच्चिदानन्द गुरु की प्रतिक्षा में बैठे रहें? नहीं, श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्दजी के कथन का यह अर्थ नहीं है। भगवान् तो इस धराधाम में ५०० वर्ष या १००० वर्ष बाद अवतीर्ण होते हैं और वह भी कुछ वर्षों के लिए। किन्तु मानव शरीरधारी सद्गुरु तो पृथ्वी पर सब समय ही रहते हैं। सच्चिदानन्द भगवान् मानव देह के बिना ही आकर किसी मनुष्य को शिष्य बना लें यह तो सम्भव नहीं है।

विद्युत शक्ति हमें बिना बल्ब या ट्यूब लाइट के प्रकाश नहीं दे सकती, बिना पंखे के हवा नहीं दे सकती, बिना हीटर के गर्मी नहीं दे सकती, बिना रेडियो के ध्वनि नहीं सुना सकती। यद्यपि विद्युत शक्ति ही इन सब यंत्रों के माध्यम से सभी कार्यों की मूल है किन्तु उपयोगी होने के लिए कार्य करने के लिए इसे इन यंत्रों का आश्रय लेना पड़ता है। उसी प्रकार सच्चिदानन्द ईश्वर ही गुरु हैं किन्तु

शिष्य पर कृपा करने के लिए, उसे धर्म दीक्षा देने के लिए सच्चिदानन्द गुरु ही मनुष्यरूप धारण करते हैं—मानव देहधारी गुरुदेव के माध्यम से ही सच्चिदानन्द गुरु शिष्य का उद्धार करते हैं। मेरे गुरुदेव पूज्य श्रीमत् स्वामी माधवानन्दजी महाराज कहते थे, "मैं गुरु नहीं, गुरु तो सच्चिदानन्द भगवान् स्वयं ही हैं, सच्चिदानन्द भगवान् ही तुम्हारे गुरु हैं, मैं तो केवल लाउड स्पीकर (Loud Speaker) हूँ। माइक (Mike) पर बोलने वाले तो सच्चिदानन्द गुरु ही हैं।"

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी का अपने गुरु के प्रति ऐसा ही भाव देखा जाता है। गुरु वन्दना करते हुए लिखते हैं,

"वंदउं गुरुपदकंज कृपा सिंधु नर रुप हरि"

—अर्थात् मैं उन गुरु महाराज की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और मनुष्यरूप में श्री हरि ही हैं। गोस्वामीजी का संकेत बड़ा ही मार्मिक है 'मनुष्य (गुरुदेह) में श्रीहरि ही हैं।' यद्यपि देखने में नर देहधारी गुरु साधारण मनुष्य के समान ही लगते हैं परन्तु वास्तविक व्यक्ति तो श्री हरि ही हैं। अतः गुरु में साधारण बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है—

'तुमको एक गुरु, एक सच्चा गुरु खोजना चाहिए, और तुमको यह याद रखना चाहिए कि वह केवल मामूली मनुष्य नहीं होता। वह भौतिक मनुष्य नहीं होता - वह वह नहीं होता, जो तुम्हारी आँखों को दिखाई देता है। यह हो सकता है कि गुरु तुम्हारे पास मनुष्य के रूप में आये और तुम उससे शक्ति प्राप्त करो, कभी-कभी वह स्वप्न में आएगा और संसार को कुछ दे जाएगा। गुरु की शक्ति हम तक अनेक प्रकार से आ सकती है। पर हम साधारण नश्वर प्राणियों के लिए गुरु को ही आना चाहिए और उसके आने तक हमारी तैयारी चलती रहनी चाहिए।'

(वि०सा० ३, १९६-९७)

अब मनमें एक प्रश्न उठ सकता है जब गुरु भौतिक शरीर नहीं होता उसके भीतर निहित सच्चिदानन्द परमात्मा होता है तो दीखने वाले गुरु के शरीर के प्रति श्रद्धा और भक्ति कैसे कर सकते है ?

इसे इस प्रकार समझ लीजिए। प्रकाश देने वाला बल्व विद्युत शक्ति नहीं है किन्तु जलता बल्व प्रकाश देता है और छूने से गर्म भी लगता है। किसी-किसी स्थान पर छूने से झटका भी मारता है। बिजली का तार विद्युत शक्ति नहीं है परन्तु विद्युत-प्रवाह के समय उसे छूने से ही उठाकर दूर फेंक देगा। अतः बल्व और विद्युत-शक्ति अभिन्न हैं। उसी प्रकार से सच्चिदानन्द ही गुरु हैं और गुरु उनका चिन्मय रूप है। गुरु का शरीर-दर्शन उनका दर्शन है, गुरु की पूजा-अर्चना उनको पूजा अर्चना है।—'कृपा-सिंधु नररूप हरि हैं वे'। गुरु साक्षात् परमेश्वर हैं, इस भाव को रखने वाले को ही सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है अन्य को नहीं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

तंत्र में भी कहा है :—

'गुरौ मनुष्य बुद्धिन्तु मन्त्रे चाक्षरभावनम्।
प्रतिमासु शिलाज्ञानं कुर्वाणो नरकं व्रजेत॥

"—अर्थात् गुरु में मनुष्य बुद्धि करने से, इष्ट मंत्र को अक्षर मात्र समझने से और देव-देवी को प्रतिमा को मिट्टी या पत्थर समझने से मनुष्य नरकगामी होता है।"

सच्चिदानन्द भगवान् मनुष्यरूप में गुरु बनकर इसलिए आते हैं कि मनुष्य की भाषा मनुष्य सहज रूप में समझ सकता है। रामचरितमानस में इस सत्य का एक सुन्दर उदाहरण मिलता है।

समुझइ खग खग ही कै भाषा

गरुड़जी ने भगवान श्रीराम के अवतार की बात सुनी थी-। इधर जब श्रीराम नागपाश में बंध गये तो नारदजी गरुड़जी को नागपाश काटकर श्रीराम को मुक्त करने के लिए भेजा। अपने स्वामी बैकुण्ठवासी भगवान् श्री विष्णु के अवतार श्रीराम के बन्धन तो गरुड़जी ने काट दिये किन्तु उनके मन में एक बड़ा भारी संशय उत्पन्न हुआ।

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बाँधेउ नाग ,पास सोइ राम ॥

अर्थात्—'जिसका नाम जपकर मनुष्य भव-बंधन से छूट जाते हैं, उन्हीं राम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश में बाँध लिया।"

बार-बार अपने मन को समझाने पर भी गरुड़ जी सन्देहमुक्त न हो सके। मोह से व्याकुल होकर वे नारदजी के पास गये। नारदजी को उन पर बहुत दया आयी। किन्तु स्वयं प्रभु की मोहिनी माया के द्वारा बहुबार ठगे जाने के कारण उन्होंने गरुड़जी का संदेह दूर करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्हें ब्रह्माजी के पास भेजा। ब्रह्मा जी ने भी सोचा कि प्रभु की माया बड़ी ही प्रबल है। इससे बड़े-से-बड़े ज्ञानी, ऋषि, महर्षि मोहित हो जाते हैं। ब्रह्माजी स्वयं भी प्रभु की माया से कई बार व्याप्त हो चुके थे। अतः उन्होंने गरुड़जी से कहा, "जान महेस राम प्रभुताई" प्रभु की लीला का रहस्य भगवान् ने शंकर को ही मालूम है। भगवान् शंकर प्रभु के अवतार को तत्त्व से जान लिया है। वे तो निरन्तर प्रभु 'श्रीराम' का नाम जपते रहते हैं और नाम के प्रताप से उनके सामने सब रहस्य उद्घाटित हो गये हैं। इसलिए उन्हें छोड़कर और कोई भी गरुड़ के संदेह का निवारण नहीं कर सकता। इसलिए उन्होंने कहा,

बैनतेय संकर पहिं जाहू।
तात अनत पूछहु जनि काहू ॥
तहँ होइहि तब संशय हानी।
चलेउ विहंग सुनत बिधि बानी ॥

अर्थात्—"हे गरुड़ तुम भगवान् शंकर के पास जाओ। हे तात् ! और किसी से अपनी शंका का समाधान नहीं पूछना। एक मात्र उन्हीं के पास तुम्हारी शंका का निवारण होगा। ऐसा सुनकर गरुड़ जी भगवान् शंकर के पास चले।

भगवान् शंकर उस समय कुबेर के घर जा रहे थे और जगदम्बा कैलास पर थीं। भगवान् शंकर से गरुड़जी की भेंट रास्ते में हुई। गरुड़ जी ने श्रद्धा पूर्वक भगवान् शंकर को प्रणाम किया और उन्हें अपना संदेह सुनाया।

यहाँ भगवान् शंकर ने समस्त साधकवर्ग के लिए कहा है कि संदेह निवारण तो तब होता है जब दीर्घकाल तक सत्संग करके मन पवित्र हो जाये। यह रास्ते में चलते हुए पूछने की बात नहीं है। बहुत बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं। कभी रेलगाड़ी में तो कभी बस में या किसी दुकान में सौदा खरीदते हुए व्यक्ति सांसारिक वार्तालाप करते हुए अचानक हमारे गेरुआ वस्त्र देखकर पूछने लगते हैं, "स्वामीजी भगवान् को कैसे पाया जाए ?" "महाराजजी मन को वश में कैसे करें ?" वास्तव में ये प्रश्न प्रश्न के लिए ही किये जाते हैं उत्तर पाने के लिए नहीं। मन तो अस्थिर है और प्रश्न पूछ बैठे। यदि कहीं उत्तर दिया भी जाए तो देखा जाता है कि प्रश्न करने वाले ऊब जाते हैं इधर-उधर देखने लगते हैं। ये जिज्ञासाएँ निष्ठाहीन और व्यर्थ हैं।

प्रभु की महिमा जानने के लिए, भगवान् के चरणों में भक्ति और अनुराग प्राप्त करने के लिए उनकी दिव्य लीला और रहस्य को परमज्ञानी भक्त के पास सुनना चाहिए तथा दीर्घकाल तक सत्सङ्ग के द्वारा मन पवित्र कर भगवद्कथा को ग्राह्य करने की क्षमता अर्जन करनी चाहिए। इसीलिए भगवान् शंकर ने गरुड़जी से कहा,

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही।
कवन भाँति समुझावौं तोही ॥

नित हरिकथा होत जहँ भाई।
पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा।
रामचरन होइहि अति नेहा ॥

—'हे गरुड़। तुम तो मुझे रास्ते में मिले हो। यहाँ तुम्हारा संशय कैसे भङ्ग करूँ—रास्ता चलते तुम्हें कैसे समझाऊँ? हे भाई! जहाँ प्रतिदिन हरि-कथा होती है, तुमको मैं वहाँ भेजता हूँ, तुम जाकर उसे सुनो। उसे सुनते ही तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा। और तुम्हें श्रीरामजी के चरणों में अत्यन्त प्रेम होगा।

मन में प्रश्न जागता है कि भगवान् शंकर तो तीनों लोकों के गुरु हैं, वे स्वयं सच्चिदानन्द रूप हैं, अजन्मा और अमर हैं तो उन्होंने गरुड़ जी का गुरु होना स्वीकार क्यों नहीं किया। वे तो सर्वदा माँ पार्वती को श्रीराम की गाथा सुनाते रहते हैं। अतः वे कह सकते थे, "गरुड़! रास्ते में मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ? चलो कैलाश पर मेरे पास कुछ दिन रहो और भगवान् राम की तत्त्व से गाथा सुनो तुम्हारे सब संशय दूर हो जायेंगे। किन्तु ऐसा न करके उन्होंने गरुड़जी को काकभुसुंडि जी के पास भेज दिया।

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।
तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला ॥
रामभगति पथ परम प्रवीना।
ग्यानी गुन गृह बहु कालीना ॥
राम कथा सो कहइ निरंतर।
सादर सुनहिं विविध विहंगवर ॥

भगवान् शंकर ने ऐसा क्यों किया? यह प्रश्न उठता है। काकभुसुंडिजी में ऐसा कौन-सा गुण था जो भगवान् शंकर को गरुड़जी को उनके पास भेजना पड़ा? मुनिश्रेष्ठ भगवान् के परमभक्त नारद, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी और भगवान् शंकर जो शंका निवारण न कर पाये उसे काकभुसुंडि कैसे दूर करेंगे?

इन प्रश्नों का उत्तर भगवान् शंकर स्वयं माँ पार्वतीजी को बताते हैं।

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा।
समुझइ खग खग ही कै भाषा ॥

'—फिर कुछ इस कारण से भी मैंने उसको अपने पास नहीं रखा कि पक्षी ही पक्षी की भाषा समझ सकते हैं।" पक्षियों के आचार विचार व्यवहार पक्षी ही जान सकता है। पक्षियों के मन के भाव भी पक्षी ही समझ सकता है। अतः भगवान् शंकर ने उन्हें रामभक्ति के मार्ग में परम प्रवीन, ज्ञानी, गुणों के धाम, प्राचीन और निरंतर भगवान् के गुणगान करनेवाले पक्षी देहधारी काकभुसुंडि जी के पास भेजा था, जहाँ पहले से ही बहुत भक्त पक्षीवर निरंतर सत्संग करते हैं।

भगवान् शंकर का उपदेश ग्रहण कर गरुड़जी बड़े हर्ष के साथ शिवजी को प्रणाम कर काकभुसुंडि जी के पास चले गये और वहाँ उनकी कृपा से गरुड़जी के संदेह दूर हुए।

जिस प्रकार पक्षिराज गरुड़जी का मोह दूर करने के लिए नारद, ब्रह्मा तथा स्वयं महादेव के स्थान पर काकभुसुंडिजी की आवश्यकता पड़ी, उसी प्रकार मनुष्य देहधारी जीवों के मोह दूर कर उन्हें भवसागर से पार करने के हेतु मनुष्य देहधारी गुरु की ही आवश्यकता पड़ती है। नरदेहधारी गुरु ही मनुष्य को सत्संग करा सकते हैं, उसी की भाषा में राम रहस्य समझा सकते हैं। भगवान् सच्चिदानन्द, निर्गुण निराकार हैं किन्तु जीवों पर दया करके ऐसा सगुण साकार रूप बनाते हैं जिसके द्वारा वे जीवों को सत्संग करा सकें, उसकी ही भाषा में बोल सकें किन्तु सब मानव गुरुओं के भीतर वे एक सच्चिदानन्द परमात्मा ही वास्तविक गुरु हैं। ☐

माँ सारदा की साधनाएँ

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीरामकृष्ण माँ श्रीसारदा देवी, तथा स्वामी विवेकानन्द, यह त्रिमूर्ति, एक ही मानवादर्श, एक ही भावधारा के तीन पक्ष हैं। तीनों के जीवन तथा उपदेशों में समानता भी है और भिन्नता भी। लेकिन यह भिन्नता परस्पर परिपूरक है, विरोधी नहीं। अगर श्रीरामकृष्ण आदर्श हैं तो स्वामीजी उस आदर्श के उद्‍घोषक। श्रीरामकृष्ण वेद हैं और स्वामीजी उसके भाष्य। और माँ सारदा का जीवन व उद्देश्य उसी आदर्श का दैनन्दिन जीवन में, जीवन के निम्न से निम्नतर स्तर पर उसके रूपायन का व्यावहारिक प्रदर्शन है। श्रीरामकृष्ण का सारा जीवन भगवदोन्माद में बीता था। वे निरन्तर भाव समाधि में ही डूबे रहते थे। लेकिन माँ सारदा को संसार में रहना, दैनन्दिन जीवन की छोटी बड़ी सभी समस्याओं से जूझना पड़ा था। जैसा जीवन माँ सारदा ने जीया, वैसा श्रीरामकृष्ण के लिए जीना लगभग असंभव था।

साधना के विषय में भी श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी के जीवन में पार्थक्य दिखाई देता है। श्रीरामकृष्ण की साधनावस्था एवं सिद्धा-वस्था के बीच की रेखा अत्यन्त स्पष्ट है। जिन बारह वर्षों तक श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न साधनाएँ कीं, तब वे साधक ही थे। भले ही इस काल में भी उन्होंने गुरुभाव से कुछ लोगों की सहायता की हो, लेकिन वास्तविक धर्म प्रचार एवं गुरुभाव में प्रतिष्ठित हो मुमुक्षु साधकों का आध्या-त्मिक जागरण और मार्गदर्शन उन्होंने षोड़शी पूजा के बाद तथा माँ जगदम्बा से "भावमुख" में अवस्थान करने का आदेश प्राप्त करने के बाद ही किया था। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न साधनापद्धतियों का अनुष्ठान एक के बाद एक, क्रमपूर्वक किया था, एक साथ नहीं। तंत्र साधना में सिद्धि प्राप्त करने के बाद ही उन्होंने दूसरी साधना का अनुष्ठान किया था।

स्वामी विवेकानन्द का साधन-काल एवं सिद्धावस्था में प्रतिष्ठित हो धर्म प्रचार करने का काल इन दोनों कालों के बीच की रेखा श्रीरामकृष्ण की तरह बहुत स्पष्ट न होते हुए भी दिखाई अवश्य देती है। श्रीरामकृष्ण की नश्वर-लीला-संवरण के बाद जब स्वामीजी परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण को निकले, तब भी उनके मन में हिमालय की किसी गुफा में बैठकर ध्यान-मग्न होने की वासना विद्यमान थी। गाजीपुर में पवहारी बाबा से वे हठयोग आदि सीखना चाहते थे। लेकिन अपूर्णता का यह बोध धीरे-धीरे कम होता गया और यह कहना गलत नहीं होगा कि कन्याकुमारी में स्वामीजी का साधक से सिद्ध में, जिज्ञासु से आचार्य में रूपान्तरण पूर्ण हो गया था। जहाँ तक साधना पद्धति का प्रश्न है, स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण की तरह तन्त्र, वैष्णव धर्म आदि की साधनाएँ नहीं कीं। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अद्वैत वेदान्त का उत्तम अधिकारी जानकर उनसे वेदान्त की साधना करवायी। ध्यान-सिद्ध तो स्वामीजी थे ही। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण ने उन्हें "राम" मन्त्र में भी दीक्षित किया था।

माँ सारदा के जीवन में साधक और सिद्धा-वस्था का विभाजन करना अत्यन्त कठिन है। माँ का समग्र जीवन सेवा और साधना के एक निरवच्छिन्न प्रवाह के रूप में व्यतीत हुआ था। श्रीरामकृष्ण के जीवनकाल में वे उनकी तथा उनके भक्तों की सेवा में रत रहीं और उनके तिरोधान के बाद भी अपनी असंख्य सन्तानों की सेवा में रत रहीं। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के मार्ग दर्शन में उन्होंने साधना की थी। और उनके तिरोधान के बाद भी पंचतपा का अनुष्ठान किया था। मोटे तौर पर श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद तीर्थ यात्रा पर गमन तथा वृन्दावन में स्वामी योगानन्द को मन्त्रदीक्षा के पूर्व तक का काम माँ सारदा का साधना-काल माना जा सकता है। इसी काल में श्रीरामकृष्ण के बार-बार दर्शनों को प्राप्त कर उनकी अपूर्णता, अतृप्ति का भाव

पूरी तरह दूर हुआ था ।

माँ सारदा ने किस साधना पद्धति का अनुष्ठान किया, यह तो और भी अस्पष्ट है । वे नियमित जप-ध्यान करती थीं, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्णकी सेवा ही उनकी प्रधान साधना थी । माँ सारदा की साधना के विषय में विद्यमान तथ्य भी अत्यन्त अल्प हैं । लेकिन यदि हम श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी के अपने अपने विशिष्ट जीवनोद्देश्य को ध्यान में रखें तो यह बात हमें खटकेगी नहीं । श्रीरामकृष्ण के जीवन का महान उद्देश्य था, सभी धर्मों एवं साधन-पद्धतियों की सत्यता को प्रयोगिक रूप में सिद्ध करना । इसलिए उन्होंने प्रत्येक प्रचलित साधना-प्रणाली को एक-एक करके लिया और बिना किसी अन्य पद्धति के मिश्रण के, केवल उसी की सहायता से लक्ष्य तक पहुँचे । स्वामीजी के जीवन का महत् उद्देश्य था, श्रीरामकृष्ण के अभूतपूर्व जीवन की व्याख्या करना, उनके द्वारा उद्घाटित आध्यात्मिक सत्यों को युक्ति युक्त तरीके से, सुनियोजित ढंगसे, विश्लेषण सहित प्रस्तुत करना जिससे आधुनिक मानव उसे समझ सके । श्रीरामकृष्ण की साधनाओं को ही स्वामीजी ने चार योगों के रूप में विभाजित करके धर्म जगत के समक्ष एक नयी युगोपयोगी योजना, साधना की नयी रूप रेखा, प्रदान की । और माँसारदा का महान कार्य था इन चारों योगों को दैनन्दिन सांसारिक जीवन में, व्यवहार में, परिणत करके दिखाना । अतः यदि माँ ने तन्त्र, वेदान्तादि की पृथक-पृथक साधना न भी की हो, तो भी कुछ बनता बिगड़ता नहीं । वह कार्य तो श्रीरामकृष्ण कर ही गये हैं, और तन्त्र वेदान्तादि के साधकों के लिए प्रमाण और आदर्श दोनों ही प्रस्तुत कर गये हैं । माँ के जीवन का, उनकी साधनाओं का व्यावहारिक महत्व इससे कहीं अधिक है तथा उन असंख्य नर नारियों के लिए है जो सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए साधना करना चाहते हैं । हम चाहें तो भी श्रीरामकृष्ण का सा जीवन व्यतीत नहीं कर पायेंगे, हममें से अधिकांश स्वामी जी की तरह धर्म प्रचार, विश्व का भ्रमण नहीं कर सकते । हम लोगों के सामान्य जीवन के निकटतम तो माँसारदा का जीवन ही आता है । अतः उनकी साधनाओं का अध्ययन हमारे लिए कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रत्येक साधक कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा राजयोग में से किसी एक का अनुष्ठान कर चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । लेकिन स्वामी विवेकानन्द इन चारों योगों के समन्वय के पक्ष में थे । स्वयं श्रीरामकृष्ण में इन चारों योगों का पूर्ण एवं समन्वित विकास हुआ था । अगर हम माँ सारदा की साधनाओं का गहराई से अवलोकन करने का प्रयत्न करें, तो पायेंगे कि उन्होंने इन चारों योगों के विभिन्न अंगों का न्यूनाधिक मात्रा में अनुष्ठान किया था । यही नहीं, उनके जीवन में इन चारों योगों की सिद्धावस्था भी दिखाई देती है ।

एक बात और है । विभिन्न योगों के अंगों का पुस्तकों में लिखित वर्णन पढ़ना एक बात है और अपने जीवन में अभ्यास करना दूसरी बात है । दैनन्दिन जीवन यापन करते हुए यम-नियमों का पालन कैसे करना चाहिए, यह किसी महापुरुष के जीवन से ही समझा जा सकता है, यमादि के ग्रन्थों में लिखित वर्णन से नहीं । माँ सारदा की साधनाओं का विश्लेषणात्मक् अध्ययन हमें इसका स्पष्ट चित्र प्रदान करेगा । उसमें हम विभिन्न योगांगों के गौण एवं मुख्य अंगों को समझने में भी समर्थ होंगे ।

श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग के महान रचयिता, स्वामी सारदानन्दजी से एक बार माँ सारदा की विस्तृत जीवनी लिखने का आग्रह किया गया था । वस्तुतः उनसे श्रेष्ठ माँ का जीवनीकार और कोई हो भी नहीं सकता था, लेकिन स्वामी सारदानन्द

जो ने इस कार्य में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। यह कहना कठिन है कि सारदानन्दजी माँ की साधनाओं का वर्णन करने में कौन सी पद्धति अपनाते। जहाँ तक हमारा प्रश्न है, माँ की साधनाओं का योग चतुष्टय के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन अधिक उपयोगी होगा। प्रत्येक योग के तीन भाग किये जा सकते हैं: प्रारंभिक तैयारी, मुख्य साधना, और सिद्धावस्था। माँसारदा की साधनाओं को भी इन तीन भागों में विभक्त कर अध्ययन करने का प्रयत्न किया जायेगा।

माँ सारदा के जीवन में राजयोग

बहिरंगयोग—

पातंजल योग सूत्र के आठ अंगों में से प्रथम पाँच बहिरंग योग कहलाते हैं। सर्व प्रथम हैं, पाँच यम--अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। व्यासदेव ने अहिंसा की परिभाषायों की है: "सर्व प्राणिपु सर्वदा सर्वथा अनभिद्रोहः" अर्थात् समस्त प्राणियों के प्रति सदा सभी स्थितियों में सर्व प्रकार से द्रोह रहित होना। माँसारदा के जीवन का अवलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने मन, वचन और कार्य से कभी किसी का अकल्याण न तो किया और न कभी किसी के प्रति द्वेप की भावना रखी। उपर्युक्त शास्त्रोक्त परिभाषा में अहिंसा के मानसिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, लेकिन यथार्थ अहिंसा को वाणी और क्रिया में भी अभिव्यक्त होना चाहिए। माँसारदा की अहिंसा प्रेम, कृपा तथा संसार के सभी प्राणियों के प्रति मातृ की भावना का एक परिणाम था। वे कहा करती थीं "मैं सबकी माँ हूँ, मनुष्यों की तो हूँ ही, पशु पक्षी, कीट पतंगों तक की माँ हूँ।" "मेरी कृपा सब पर है, वह अभागा, है जिस पर मेरी कृपा न हो।" बाल्य काल से ही वे शान्त सरल, सहनशील प्रकृति की थीं। जब कभी छोटी बच्चियों का आपस में झगड़ा होता तो वे ही उनके झगड़े को निबटा देती थीं। भले उन्हें कितना ही कष्ट सहना पड़े, पर वे कटु अप्रिय वचन भी बोलना नहीं चाहती थीं। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण को भोजन सामान्यतः माँ ही खिलाया करती थीं। कभी-कभी गोलाप माँ भोजन ले जाती थीं, तथा बहुत देर तक श्रीरामकृष्ण के पास बैठकर बातचीत किया करती थीं। इधर माँ को बहुत देर तक गोलाप माँ के भोजन की रखवाली करते हुए उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, लेकिन माँ ने कभी इसकी शिकायत तक नहीं की। जिसने कभी अनजान में बातचीत में भी किसी का दिल नहीं दुखाया, वह किसी की हिंसा करे, यह तो सम्भव ही नहीं है।

समस्त प्राणियों में स्वयं की आत्मा की अवस्थिति के सिद्धान्त पर अहिंसा आधारित है: "सर्वभूतस्थमात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि"। लेकिन माँसारदा ने अहिंसा को प्रेम के रूप में एक नया आधार प्रदान किया है। उनका मूल मन्त्र था "कोई पराया नहीं है, सभी अपने हैं।" और उनके जीवन में अहिंसा का निपेधात्मक पक्ष अर्थात् "किसी को कष्ट न दो" के साथ विद्रोहात्मक पक्ष अर्थात् "सबकी सेवा करो" भी उतना ही प्रबल था। हिंसा भी दो प्रकार की होती है। भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा। भाव हिंसा का सम्बन्ध मानसिक वृत्ति से है जबकि द्रव्य हिंसा का अर्थ हिंसात्मक क्रिया से है। माँसारदा ने भाव हिंसा के त्याग पर अधिक महत्व दिया। इसी तरह अहिंसा के स्थूलतम, एवं गौणतम रूप शाकाहार अथवा आमिष भोजन वर्जन को माँ ने अधिक महत्व नहीं दिया। आधुनिक जटिल समाज में, जहाँ कोई भी व्यक्ति अन्य किसी प्राणी को कष्ट दिये बिना रह ही नहीं सकता, मांसारदा का मानो यह संदेश है कि यदि हम मन, वचन और क्रिया से मानवों के प्रति आद्रोह व अहिंसा का पालन कर सकें तो वह पर्याप्त है।

दूसरा यम है, सत्य। सत्यसन्ध श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी होकर माँ भी सत्य का पालन

करती हों यह तो स्वाभाविक ही है। माँ के सत्य पालन के विषय में छोटे मोटे दृष्टान्तों के अतिरिक्त और कोई प्रमाण उनकी जीवनी में नहीं मिलती। उदाहरण के लिए, माँ ने मास्टर महाशय की धर्म पत्नी को कहा था कि तीर्थ यात्रा पर जाने पर वे उन्हें साथ ले जायेंगी, और उन्होंने अपने वचन को बाद में निभाया था।

माँसारदा के असत्य भाषण का एक रोचक दृष्टान्त उनकी जीवनी में हमें प्राप्त होता है। एक बार श्रीरामकृष्ण के रोग ग्रस्त होने पर उन्हें केवल दूध के पथ्य पर रहने का निर्देश वैद्य ने दिया था। श्री माँसारदा श्रीरामकृष्ण को दिये जाने वाले दूध को गरम करके गाढ़ा करती थीं, जिससे दूध मात्रा में कम दिखे, किन्तु वस्तुतः अधिक हो। इस तरह धीरे-धीरे बढ़ाते हुए वे श्रीरामकृष्ण को डेढ़ दो सेर तक दूध देने लगी थीं, लेकिन श्रीराम-कृष्ण यही समझते थे कि वे एक सेर या उससे कम दूध लेते हैं। एक दिन गोलापमाँ की असाव-धानी के कारण यह बात खुल गयी और जब श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा कि वे कितना दूध देती थी, तो माँ को कुछ बहाना सा बनाना पड़ा। इस विषय में पूछे जाने पर परवर्ती काल में माँ कहा करती थीं कि किसी के कल्याण के लिए असत्य बोला जा सकता है। माँ के इस छोटे से असत्य से श्रीरामकृष्ण के स्वास्थ्य में बहुत उन्नति हुई थी। शास्त्रों में भी कहा गया है कि अगर सत्य से किसी का अकल्याण हो तो वह सत्य-सत्य की श्रेणी में नहीं आ सकता।

माँसारदा आजीवन पूर्ण ब्रह्मचारिणी तो थी हीं। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उनकी पवित्रता को प्रमाणित किया है। वस्तुतः वे तो पवित्रता स्व-रूपणी थीं। उनके मन में कभी भी कोई अपवित्र विचार या वासना का उदय तक नहीं हुआ था।

पूर्ण निर्वासना होने के कारण माँ सारदा के जीवन में अपरिग्रह और अस्तेय स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। पैत्रिक सम्पत्ति के बटवारे के सम[य] उन्होंने अपना भाग स्वीकार नहीं किया था। किसी से कुछ नहीं माँगती थी। देने पर भ[ी] आवश्यकता होने पर ही स्वीकार करती थी[ं]। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें निर्देश दिया था कि किसी [के] सामने हाथ न पसारना। अतः श्रीरामकृष्ण [के] तिरोधान के बाद अत्यन्त दरिद्रता की अवस्था [में] भी, जब चावल के साथ खाने को नमक भी नहीं जुटता था, माँ ने कभी किसी से कुछ नहीं माँगा। गृहस्थी का काम काज चलाने ने लिए थोड़ा बहुत संग्रह आवश्यक है, लेकिन माँ का स्वभाव ऐसा था कि वे जो कुछ भी अपने पास होता उसे दूसरों को बाँट देती थी और कभी-कभी श्रीरामकृष्ण के खाने ने लिए भी कुछ नहीं रहता था। एक बार स्वयं श्रीरामकृष्ण ने चिन्तित हो माँ के इस खुले हस्त की शिकायत की थी। परवर्ती जीवन में अवश्य माँ को बाध्य हो थोड़ा बहुत रुपया रखना पड़ता था, लेकिन वे न तो कभी उसे गिनती थीं और न ही उसका हिसाब रखती थीं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि सार्वभौम महाव्रतों की दृष्टि से माँ ने अहिंसादि का पूर्व पालन न किया हो, तो भी गृहस्थी एवं नाना जिम्मेदारियों का वहन करते हुए उन्होंने सभी यमों का पर्याप्त, यथेष्ट पालन किया था। यही नहीं, संसार में रहते हुए इनका पालन किस प्रकार किया जा सकता है, इसका भी श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते हैं। शौच अर्थात् मानसिक और शारीरिक पवित्रता। माँसारदा ने प्रभु से रो रोकर प्रार्थना की थी कि प्रभु चन्द्रमा में भी कलंक है, मेरे चरित्र में किसी भी प्रकार का कलंक न हो। प्रभु ने उनकी प्रार्थना सुनी थी, और उन्हे पूर्व निष्कलंक बना दिया था। परदोष-दर्शन का नितान्त अभाव माँसारदा का सबसे बड़ा प्रमाण है, क्योंकि स्वयं में दोष हुए बिना उस दोष

को कोई दूसरे में नहीं देख सकता। बाह्य शौच के विषय में माँ के जीवन की किसी घटना विशेष का उल्लेख करना सम्भव नहीं है, लेकिन श्रीरामकृष्ण जैसे शुद्ध सत्व गुणी महापुरुष की सेवा करने में माँ को कितनी शुद्धि एवं सावधानी बरतनी पड़ती होगी यह अनुमान लगाया जा सकता है।

माँ के लिए सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहना स्वाभाविक था. अनेक दृष्टान्तों में से केवल एक का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। एक बार माँ ने कुछ जूट की रस्सियाँ बँटने के बाद बचे हुए रेशों से वस्तुएँ, टाँगने के सींके बनाये। उसके बाद बचे हुए रेशों को खोल में भरकर तकिया बना लिया। वृद्धावस्था में रूई के गद्दों पर सोते समय माँ कहा करती थीं कि चटाई तथा जूट के तकिए पर सोने से भी उतनी ही अच्छी नींद आती थी जितनी कि अब इन रूई के गद्दे व तकियों पर।

माँ का जीवन तपोमय था। तप कई प्रकार के होते हैं, लेकिन उनके विश्लेषण में न जाकर केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि माँसारदा ने कठिन "पंचतपा" किया था। उनके प्रतिदिन एक लाख जप को मानसिक तप की संज्ञा दी जा सकती है। नहबत खाने जैसे छोटे व सँकरे कमरे में इतने वर्षों तक रहना भी अपने आप में एक महान तप था। माँ स्वाध्यायप्रिया भी थीं। स्वयं पढ़ न सकने पर भी वे अन्य महिलाओं से पढ़वाकर रामायण-महाभारत तथा सद्यः प्रकाशित श्रीरामकृष्ण वचनामृत आदि ग्रन्थ लगभग प्रतिदिन सुना करती थीं। और फिर स्वय श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से उन्होंने न जाने कितनी धर्म व अध्यात्मय विषयक बातें सुनी थीं। पेचिस की बीमारी के समय माँ सिंहवाहिनी के सामने "हत्या" देना, माँ की भगवत् शरणागति का दृष्टान्त है।

राजयोग का अगला अंग "आसन" है। माँ सारदा दीर्घकाल तक एक ही आसन में निश्चल हो बैठकर ध्यान करने में समर्थ थीं। प्रातः काल ३ बजे उठकर ध्यान में बैठने का उन्हें अभ्यास था। उन्होंने प्राणायाम का विधिवत अभ्यास किया था या नहीं, यह कहना तो कठिन है, लेकिन जप करते करते, प्राणायाम का मुख्य अंग-कुम्भक उन्हें हो जाया करता था।

यह भी विदित है कि स्वयं श्रीरामकृष्ण ने माँ को कुण्डलिनी तथा षट्चक्रों का चित्र बनाकर उनके गूढ़ रहस्यों को समझाया था। अपने मन को विषयों से खींच कर इष्ट चिंतन में लगाना प्रत्याहार कहलाता है। श्रीरामकृष्ण की सेवा, उनके चिन्तन में पूरा मनोनिवेश करने के कारण माँ का प्रत्याहार स्वाभाविक रूप में सध गया था।

अन्तरंग योग :—

योग के अन्तरंग अंग धारणा, ध्यान और समाधि हैं, तथा इन तीनों को संयुक्त रूप से संयम कहा जाता है। चित्त ऐकाग्रता की ये तीन सीढ़ियाँ एक ही प्रक्रिया के तीन अंग हैं। माँसारदा नियमित रूप से प्रतिदिन प्रातः काल ३ बजे उठकर ध्यान किया करती थीं। ध्यान सामान्यतः इतना गहरा होता था कि उन्हें बाह्य जगत को तथा अपनी देह तक की सुध नहीं रहती थी। एक दिन हवा के झोंके से उनके चेहरे का पटावरण हट गया था, लेकिन उन्हें उसका पता ही न चला।

सिद्धावस्था :—

पातंजल योग सूत्रों में अनेक प्रकार की योगज सिद्धियों का वर्णन है। प्रथम तो यम नियमादि बहिरंग योगांगों में प्रतिष्ठा के ही कुछ विशेष परिणाम होते हैं। अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर योगी के सानिध्य में सभी प्राणी अपना बैर त्याग देते हैं। एक बार जयरामबाटी से दक्षिणेश्वर आते समय दस्यु-संकुल मार्ग में अकेले आते समय माँ का सामना एक क्रूर दस्यु से हो गया था, लेकिन वह उन्हें देखते ही करुणा विगलित हो उन्हें अपनी बेटी मानने लगा था। इस घटना की

श्रद्धालु भक्तों ने भिन्न प्रकार की व्याख्या की है। प्रेम, करुणा एवं अहिंसा की प्रतिमूर्त्ति माँ सारदा के सान्निध्य में आकर अगर दस्यु अपनी क्रूरता त्याग देता है, तो योग की दृष्टि से यह स्वाभाविक ही है। सत्य में प्रतिष्ठित होने पर योगी को वाक् सिद्धि होती है, अर्थात् उसका वाक्य अमोघ हो जाता है। माँ के दिवंगत छोटे भाई की विधवा पत्नी जो भक्तों में पगली के नाम से परिचित है, माँ के साथ ही रहती थी, लेकिन माँ पर आश्रित होते हुए भी माँ को बहुत कष्ट देती थीं। एक दिन पागलपन की अतिमात्र अवस्था में वह माँ को जलती लकड़ी से मारने दौड़ी। अचानक माँ के मुंह से निकल पड़ा कि जिस हाथ से उसने लकड़ी उठायी है, वह गल जायेगा। सचमुच पगली मामी का वह हाथ कोढ़ग्रस्त हो गल गया था।

अस्तेय में प्रतिष्ठित होने पर सर्वरत्न उपलब्धि होती है। माँसारदा के जीवन में यह उस समय अक्षरशः सत्य हुआ था जब दक्षिणात्य भ्रमण के समय रामनाड के राजा के आदेश पर राज्य का रत्न भंडार उनकी सेवा के लिए खोल दिया गया था। इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द आदि नररत्न भी उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहते थे। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा से वीर्य या तेज की प्राप्ति होती है। उद्बोधन में माँ सारदा के निवास स्थान के सामने मजदूरों की एक बस्ती में एक दिन एक मजदूर अपनी स्त्री को घूंसों से बहुत बुरी तरह मार रहा था। सामान्यतः लज्जाशील, मृदुभाषी माँ से यह देखा न गया। वे अपने भवन की पहली मंजिल से ही गरज कर इतना बोली: "अरे, क्या उसको मार ही डालेगा।" इतना सुनना भर था कि मजदूर इस तरह शान्त हो गया जैसे साँप पर धूल फेंक दी गयी हो। अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होने पर पूर्वजन्म की स्मृति प्राप्त होती है। रामेश्वर-शिव दर्शन कर स्वयं का सीतावतार, के रूप में स्मरण करना तथा यह कहना कि जैसा रखा था वैसा ही है, इसका श्रेष्ठ दृष्टान्त है।

इन उपलब्धियों के अतिरिक्त माँसारदा का जीवन अनेक चमत्कारों से भरा है, जिन्हें योगज सिद्धियाँ माना जा सकता है। भक्तों के मन में उठ रहे विचारों को जानना तो प्रतिदिन की घटना थी। इसी तरह वे शिष्यों के इष्ट एवं किस मंत्र से उन्हें दीक्षित करना चाहिए, बड़ी आसानी से जान जाया करती थीं। कौन भक्त कब आयेगा, कौन कहाँ कैसा है, आदि जानकारी भी उन्हें हो जाती थी। एक बार एक भक्त सिर पर एक मन का बोझा उठाए आ रहा था। लेकिन यह उसके लिए असह्य होता जा रहा था। अचानक वह हल्का लगने लगा। जयरामबाटी पहुँचने पर उसने देखा कि माँसारदा का चेहरा लाल हो रहा है तथा वे पसीने से लथपथ हो गयी हैं। भक्त को यह समझने में देर न लगी कि माँ ने अपनी योग शक्ति द्वारा उसके बोझ को अपने सिर पर वहन किया था।

योग शास्त्र में अनेक प्रकार की समाधियों का वर्णन पाया जाता है, जिनमें संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात या निर्बीज समाधि मुख्य हैं। देवी देवताओं के दर्शन संप्रज्ञात सामाधि में होते हैं। माँसारदा को बहुत से देवी देवताओं के दर्शन हुए थे। उन्हें नीलाम्बर मुखर्जी के भवन में निवास करते समय निर्विकल्प समाधि भी हुई थी।

उपरोक्त विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि माँसारदा ने राजयोग के विभिन्न अंगों की किसी न किसी रूप में साधना अवश्य की थी, तथा वे एक सिद्ध राजयोगी थीं। हम आगे देखेंगे कि वे एक ज्ञानी, भक्त एवं कर्मी भी थीं।

●

स्वामी विवेकानन्द

[इस अंक से हम बंगला भाषा से हिन्दी में रूपान्तरित "विवेकानन्द की लघु कथाएं" की एक कहानी अपने बालकों के लिए प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी पाण्डुलिपि रामकृष्ण विद्यापीठ, देवघर ने प्रस्तुत की है—स०]

वर्त्तमान युग का महातीर्थ है दक्षिणेश्वर। आज से सौ वर्ष पूर्व वहाँ महापुरुष श्रीरामकृष्ण वास करते थे। दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर की पाषाण प्रतिमा को अपनी साधना बल पर श्रीरामकृष्ण ने प्राणान्वित किया था। देवता उनके साथ बातें करते थे, सभी विषयों में इन्हें उपदेश देते थे।

अपनी माँ के दुलारे श्रीरामकृष्ण ने आहार निद्रा परित्याग कर वर्ष पर वर्ष जो कठोर साधना की थी, एवं उसमें जिस प्रकार सिद्धि-लाभ किया था, वह समस्त पृथ्वी के इतिहास में अद्वितीय है। रामकृष्ण थे बंगाल के एक छोटे गाँव के एक दरिद्र ब्राह्मण की सन्तान। परंतु साधना के बल पर विश्व माता ने जिस दिन उनके मस्तक पर धर्म का मुकुट पहना दिया उसी दिन उन्होंने एक अतुल धन-सम्पदा प्राप्त की थी। यह धनसम्पदा थी-रुपया पैसा नहीं, मणि, हीरे-जवाहरात नहीं, उनसे भी बढ़कर और उनसे भी दुलर्भ आध्यात्मिक सम्पदा, आत्मिक ज्ञान।

फूल-खिलने पर मधुमक्खी उस पर आती है। श्रीरामकृष्ण का हृदय-कमल जिस दिन प्रस्फुटित हुआ, उस दिन मधु के लोभ में भ्रमरों का दल चारों ओर से टूट पड़ा। रामकृष्ण ने जब माँ के दर्शन किये एवं एक-एक कर अनेक मतों, अनेक धर्मों एवं अनेक साधनाओं में लीन हो सिद्धि लाभ किया तब देश-विदेश से कितने नर-नारी दौड़ चले आये—आत्मिक शांति के लिए, ये अंधकार में प्रकाश पाने के लिए। रामकृष्ण ने अपनी धन-सम्पदा को उनके समक्ष खोल दिया। जो ले जा सकें ले जाएं। जो इसे ले जाने में सक्षम रहे, उन्हें आन्तरिक शांति मिली, स्वर्गिक आनन्द हुआ।

रामकृष्ण के मन में तब एक नयी भावना का उदय हुआ-उनकी मृत्यु के पश्चात् इस अतुल सम्पत्ति का अधिकारी कौन होगा? जितने दिन गुजरते थे, रामकृष्ण उतने व्याकुल होते जाते थे। उनकी तपस्या द्वारा प्राप्त धन-भण्डार के उत्तराधिकार के लिए कौन आयेगा? कुछ दिनों के बाद शिमला के दत्त परिवार के पुत्र नरेन्द्र नाथ एक दिन रामकृष्ण के पास उपस्थित हुए एवं प्रश्न किया, "आपने ईश्वर को देखा है?" रामकृष्ण ने उत्तर दिया, "हाँ, सिर्फ देखा ही नहीं है, तुम्हें भी दिखा सकता हूँ"।

नरेन्द्र अनेक धार्मिक लोगों से मिले थे, सभी से उन्होंने यह प्रश्न किया था परंतु किसी ने नहीं कहा था कि उसने ईश्वर को देखा है। और रामकृष्ण ने कहा कि उन्होंने सिर्फ देखा नहीं है, वे दिखा भी सकते हैं। नरेन्द्रनाथ अवाक् रह गये कि जिसके लिए उन्होंने व्याकुल होकर प्रतीक्षा की है, यह वही हैं। नरेन्द्र नाथ ने बहुत दिनों तक रामकृष्ण की परीक्षा ली और उसके बाद उनके चरणों में स्वयं को चिर-जीवन के लिए अर्पित कर दिया। रामकृष्ण भी तब परम यत्न के साथ नरेन्द्र को आध्यात्मिक शिक्षा देने लगे।

समाधि अति उच्च अवस्था है। अनेक साधना के बाद मनुष्य समाधि-लाभ करता है। समाधि में ही ईश्वर के दर्शन होते हैं। समाधि की अवस्था में मनुष्य दिव्य आनन्द उपभोग करता है। पृथ्वी में आनन्द के जितने स्रोत हैं उन सबों को एकत्र करने पर भी उसकी तुलना उस दिव्य आनन्द से नहीं की जा सकती। रामकृष्ण की शिक्षा के आलोक में नरेन्द्रनाथ ने कुछ ही दिनों में ईश्वर के दर्शन किये थे एवं अपने जीवन को धन्य बनाया था। रामकृष्ण नरेन्द्र को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। एक दिन रामकृष्ण ने नरेन्द्र से पूछा, "तुम क्या चाहते हो ?" उत्तर में नरेन्द्र ने कहा, "मुझे ऐसा कर दीजिए कि मैं सदा समाधि में लीन रहूँ, संसार से मेरा कोई वास्ता न रहे।" इस कथन की भर्त्सना करते हुए रामकृष्ण ने कहा था, "छिः मैंने सोचा था तुम इस विशाल पीपल वृक्ष की तरह बनोगे, और ससार की लाख-लाख तापित आत्माएँ तुम्हारी छाया में शांति ग्रहण करेंगी। और तुम अन्ततः अपने आनन्द के लिए आतुर हो ?" अग्नि के समीप बैठने से जिस प्रकार ताप प्राप्त होता है उसी प्रकार महापुरुषों का प्रभाव लोगों पर पड़ता है। रामकृष्ण की बातों पर उन्हें इतनी लज्जा एवं ग्लानि का अनुभव हुआ था, जितना आजीवन उन्हें कभी न हुआ। जो पत्थर से मूर्तियाँ गढ़ते हैं उन्हें भास्कर कहते हैं। सुदक्ष भास्कर एक अक्षत पत्थर के टुकड़ का लकर दिन पर दिन, महीने अथक परिश्रम कर उसमें देवता का रूप प्रस्फुटित कर निकालता है। जो विख्यात चित्रकार होते हैं, वे अपने अन्दर एक मानस प्रतिमा का दर्शन करते हैं, फिर तूलिका को ले परिश्रम कर कागज पर उस मानस देवता का रूप अंकित कर देते है। रामकृष्ण ने भी ठीक उसी तरह पल-पल परिश्रम कर नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द के रूप में गढ़ा था—ताकि वे (स्वामीजी) उनके सीमाहीन आध्यात्मिक धन भण्डार के उपयुक्त अधिकारी बन सकें, तथा जगत् में उस धन राशि को वितरित कर सकें।

संसार के दुःख-कष्ट जब मनुष्य को असह्य प्रतीत होने लगते हैं, तब वह ईश्वर को खोजता है। उनमें से कोई कोई कठोर तपस्या करके ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं। ईश्वर-दर्शन में जो आनन्द है उसका एक बार आस्वादन करने से मनुष्य सारी सांसारिक चिंताओं से मुक्त हो कर संसार को ही भूल जाता है। वह उस दिव्य आनन्द की खुमारी में दिन-रात मस्त रहता है। परंतु ऐसे भी एक-दो महाप्राण मानव होते हैं जो उस दिव्य विभूति को, प्राप्त करने के बाद भी उसी में सम्पूर्णतः लिप्त नहीं रहते। वे उस अमृत धारा को संसार के असंख्य पीड़ित-दुःखित नर-नारियों के लिए सुलभ बनाते हैं। वे ही मानव-समाज के महापुरुष हुआ करते हैं, वस्तुतः वे ही मानव देवता होते हैं।

रामकृष्ण परमहंस ने देह त्याग किया। जो युवक उनके पास आते थे उनमें से अधिसंख्य लोगों ने संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण किया। विवेकानन्द ने तब कुछ दिनों के लिए स्वयं को तपस्या एवं शास्त्र पाठ में व्यस्त रखा। उसके बाद दण्ड-कमण्डल हाथ में लेकर परिव्राजक के वेश में भारत के विभिन्न तीर्थों, नगरों, ग्रामों में स्वामीजी ने भ्रमण किया। उनकी तपस्या का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। एक पैसा भी साथ न लेकर कितनी विपदाओं का सामनाकर उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था, वह कहानी वस्तुतः आश्चर्यजनक है।

हिमालय से कन्या कुमारी तक भ्रमण समाप्त कर जब वे कन्याकुमारी में संध्या को भारत के अंतिम शिला खण्ड पर बैठे थे, तब सारे भारत के दुःख, दैन्य, अभाव-अनादर, अज्ञान-अधकार ने जैसे मूर्ति रूप धारण कर उन्हें दर्शन दिया था। भारत भ्रमण के समय घर-घर, गाँव-गाँव में व्याप्त दुःख दरिद्रता की जो विकराल छवि उन्होंने देखी थी, वह सब समवेत हो उनके हृदय पर

आघात करने लगीं। रो-रो कर वे प्रार्थना करने लगे, "जागो माँ, जागो। भारत के दुःखों को दूर करो।"

ठीक उसी समय अमेरिका के शिकागो शहर में धर्मों का महासम्मेलन आयोजित हुआ था। इस विश्व-धर्म सभा में समस्त पृथ्वी के महान धर्मों के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया गया था। इस सभा का आयोजन किया था रोमन कैथोलिक ईसाइयों ने। उनका उद्देश्य था जगत् के सारे धर्मों के समक्ष यह प्रदर्शित करना कि रोमन कैथोलिक धर्म ही सभी धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है एवं इसके बाद जोर-शोर से अपने धम का सारी पृथ्वी में प्रचार करना। भारत वर्ष में बौद्ध धर्म, ब्राह्म धर्म एवं और अनेक धर्मों को भी निमन्त्रण मिला था। परंतु हिन्दू-धर्म को उन्होंने निमंत्रित नहीं किया था, क्योंकि वे सोचते थे कि हिन्दू-धर्म असभ्यों का धर्म है।

मद्रास के कुछ युवकों ने स्वामीजो को देखकर समझा कि ये साधारण व्यक्ति नहीं है, ये भस्म के आवरण में अग्नि-पुंज है। वे स्वामीजी को अमेरिका जाने के लिए कहने लगे। अतन्तः स्वामीजी राजी हुए। युवकों ने चंदा इकट्ठा कर उनकी यात्रा की व्यवस्था कर दी।

अपने गुरुदेव को स्मरण कर स्वामीजी ने सागर को पार किया। अमेरिका आकर उन्हें अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। यूरोप-अमेरिका के गोरे विश्व के कालों को किस प्रकार घृणा की दृष्टि से देखते थे, वह सब उन देशों में नहीं जाकर समझा नहीं जा सकता। वहाँ जाकर स्वामीजी को पता चला कि जिन्हें, निमंत्रण नहीं मिला है, उन्हे धर्मसभा में जाने या बोलने नहीं दिया जाएगा। एक दिन आचानक हार्वार्ड विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक राईट साहब से स्वामीजी का साक्षात्कार हुआ। स्वामीजी के साथ एक घंटे बात कर राइट साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वामीजी के लिए लिखे गए अपने एक पत्र में लिखा था, "इस मनुष्य के अन्दर जो ज्ञान है हमारे देश के सारे पंडितों के ज्ञान को इकट्ठा करने पर भी उसके समान न हो पाएगा (हियर इज ए मैन मोर लर्नेड दैन ऑल आवर लर्नेड मैन पुट टुगेदर।")

धर्मसभा का कार्यक्रम आरंभ हुआ। मंच पर पृथ्वी के सभी धर्मों के बड़े-बड़े वक्ता बैठे थे और उनके सामने थे अमेरिका के चुने हुए शिक्षित पाँच-छः हजार नर-नारी। सभी वक्ताओं ने अपनी-अपनी वक्तृता दी। वक्तृता देने के लिए खड़े होकर सभी यही सम्बोधन करते, "अमेरिका की देवियों एवं सज्जनों।"

सबके अन्त में स्वामीजी उठे। उन्होंने कहा, "अमेरिका वासी बहनों एवं भाइयों (सिस्टर्स एण्ड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका")।

इस कथन के साथ-साथ करतलध्वनि से धर्म-सभा गूँजने लगी। उस आनन्दध्वनि के रुकने में करीब पाँच मिनट और लगे। इसके बाद स्वामीजी ने सबको धन्यवाद दिया एवं उसके बाद हिन्दूधर्म के सम्बन्ध में कुछ बातें बताकर अपनी वक्तृता समाप्त की। दूसरे दिन शिकागो के अखबारों ने स्वामीजी की तस्वीर एवं वक्तृता छापी गयी। सभी अखबारों में लिखा गया कि उस दिन स्वामीजी की वक्तृता ही श्रेष्ठ थी। हर रास्ते पर स्वामीजी की तस्वीर लगायी गयी थी एवं दिन-रात स्वामीजी के पास दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती। इस भीड़ को हटाने के लिए पुलिस तक की सहायता लेनी पड़ी थी। विधाता ने स्वयं उस दिन विवेकानन्द के ललाट पर विजय-तिलक लगाकर उसे अलंकृत किया था। अनादृत हिन्दू सन्तान अज्ञात भारत माता के पुत्र विवेकानन्द ने उस दिन विश्व का श्रेष्ठ आसान प्राप्त कर हिन्दू धर्म एवं अपनी जन्मभूमि का मुख उज्ज्वल किया था।

उस दिन के बाद और अनेक बार स्वामीजी ने धर्म-सभा में वक्तृताएँ दी। उनकी वक्तृता के समय इतने श्रोता उपस्थित होते कि क्या कहने ! उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि हिन्दू धर्म ही सत्य है, बाकी सभी धर्म मिथ्या। उन्होंने अपने गुरु के जीवन में देखा था एवं उनके पास से सीखा था कि जितने मत हैं उतने ही पथ हैं। जितने धर्ममत विश्व में प्रचलित हैं वे सब ईश्वर तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग हैं एवं सभी सत्य हैं।

हिन्दू धर्म में भी अनेक मत हैं, अनेक शाखाएँ हैं और अनेक शास्त्र हैं। इनमें सर्वोपरि है वेद। वेद के सार-मात्र का नाम है वेदान्त। स्वामीजी ने अमेरिका में इसी वेदान्त को बातों का विशेष रूप से प्रचार किया था। इन सारी बातों ने अमेरिका वासियों के मन में एक अद्‌भुत परिवर्तन लाया था।

यूरोप-अमेरिका में लोगों ने आज शिक्षा-विज्ञान-कल-कारखानों में खूब उन्नति की है। परंतु धर्म-विषय में भारत ने एक दिन इससे भी अधिक उन्नति की थी। आज के वैज्ञानिकों ने गवेषणा कर उन सारी बातों को सत्य मान लिया है। परन्तु आज भारत के प्रत्येक क्षेत्र में अवनति दीख पड़ती है। इस अवनति की अवस्था में भी भारत में इतना धर्म-तत्व मौजूद है जितना विश्व में कहीं भी नहीं है। अभी भी भारत समस्त पृथ्वी को अनेक वर्षों तक धर्म तत्व की शिक्षा दे सकता है।

मनुष्य ने जो कभी भी कल्पना नहीं की थी, स्वप्न में भी न सोचा था विधाता की इच्छा से वही हुआ। अमेरिका के शत-शत व्यक्तियों ने स्वामीजी की धर्म कथा पर मुग्ध होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। स्वामीजी ने इसके बाद सारे अमेरिका में भ्रमण कर विभिन्न स्थानों में वक्तृताएँ दीं।

भारत के इस अप्रत्याशित गौरव, हिन्दू-धर्म की इस अपूर्व महिमा एवं स्वामीजी की इस अति मानवीय सफलता को देख अमेरिका के अनेक पादरियों को ईर्ष्या हुई। दल बनाकर वे स्वामीजी का विरोध करने की सोचने लगे। वे उनको नाना प्रकार से अपमानित, अपदस्थ एवं लांछित करने की कोशिश करने लगे। उनके बारे में झूठ-मूठ की बातें अखबार में प्रचारित करने लगे। स्वामीजी के अन्तर में पवित्रता की ज्वलन्त अग्नि, आत्म-विश्वास की त्वरित शक्ति एवं गुरु के प्रति अगाध भक्ति थी। स्वामीजीने इन निन्दाओं की लेश मात्र भी परवाह न कर सिंह की भाँति सारे देश में भारत की वाणी एवं हिन्दू धर्म कथा का प्रचार किया। उनकी सफलता से उनका गौरव बढ़ता ही चला गया।

तीन वर्ष से भी अधिक दिनों के अमेरिका-प्रवास के पश्चात् स्वामीजी भारत लौटे। भारत के लोग स्वामीजी के कार्यों से बड़ा गौरव और आनन्द का बोध करने लगे। स्वामीजी जब सिंहल की राजधानी कोलम्बो में जहाज से उतरे, वैसे ही सैकड़ों लोग उन्हें निमन्त्रित कर ले गये। सिंहल एवं भारत के विभिन्न क्षेत्रों से स्वामीजी को निमंत्रण आने लगे। उन्होंने सिंहल के कई स्थानों को देख दक्षिण भारत में पदार्पण किया। भारत के पूर्व पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगहों के लोगो ने जो विपुलसम्मान स्वामीजी को दिया था, वैसा किसी ने भी प्राप्त नहीं किया था। इसके उत्तर में स्वामीजी ने सर्वत्र जाकर जो वक्तृताएँ दी थीं, वे सब 'भारत विवेकानन्द' नामक पुस्तक में विस्तृत रूप से संकलित हैं। इन वक्तृताओं ने समस्त भारत को प्रभावित किया था।

कुछ दिनों बाद विवेकानन्द ने अपने भ्राता संन्यासियों को लेकर अपने गुरुदेव के नाम से मठ की प्रतिष्ठा की, गंगा पश्चिमी तीर पर—बेलूड़ में।

स्वामीजी ने अपने गुरुदेव के पास से एक

विशेष वस्तु पायी थी — नर-नारायण सेवा। हमारी धर्म-पुस्तक में है कि परमेश्वर प्रत्येक जीव में सारे विश्व में व्याप्त है। प्रतिमा में भी वही परमेश्वर है। साधारण लोग प्रतिमा के अन्दर या अन्यत्र कहीं भी ईश्वर को नहीं देख सकते हैं। जो अत्यन्त भक्ति-भाव से पूजा करते हैं वे भक्ति के बल पर ईश्वर का दर्शन प्राप्त करते है। मनुष्य यदि दरिद्र, पतित, कंगाल, अनाथ, रुग्ण, अति दीन-दुखियों को नारायण मानकर उनकी सेवा करे तो अनन्तः वह इनके मध्य भी नारायण के दर्शन पाकर धन्य होता है। नारायण सेवा के लिए ही स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन नामक एक समिति गठित की। वर्तमान रामकृष्ण मठ एवं मिशन की शाखाएँ भारत में प्रायः सर्वत्र स्थापित हो चुकी हैं एवं भारत के बाहर यूरोप एवं अमेरिका तथा अन्य कई देशों में भी अनेक आश्रमों की प्रतिष्ठा हुई है। इनके द्वारा ही समग्र पृथ्वी से महाकल्याण की योजना साधित हो रही है।

देश के युवकों से स्वामीजी में चरणों के शरण ग्रहण की एवं सेवा-व्रत तथा त्याग की दीक्षा ली। आज भारत में जहाँ कहीं भी बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, भूकंप की विभीषिका होती है वहीं पर असंख्य लोग नारायण की सेवा के लिए दौड़े जाते हैं।—इनके मूल में स्वामीजी की ही अनुप्रेरणा है।

विवेकानन्द की जीवनी, विवेकानन्द की कहानी एक महाभारत में भी पूरी नहीं होगी। वह चित्र से भी सुन्दर है, संगीत से भी मधुर है, उपन्यास से भी मनोहर है, स्वप्न से भी आश्चर्य-जनक है। उनके जीवन की बड़ी-बड़ी घटनाओं में जैसा महत्व है वैसी ही सुन्दरता उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में है। ये घटनाएँ ही महापुरुषों की महत्ता की परिचायिका हैं: चालीस वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही स्वामीजी ने शरीर त्याग किया था। मात्र उनचालीस वर्ष की आयु में ही उन्होंने शिकागों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। शिकागो वक्तृता से लेकर देहत्याग तक की ग्यारह वर्ष की अवधि में जो आध्यात्मिक भावराशि उन्होंने भुवन भर में विस्तारित की थी, उसे प्राप्त करने में हमें अनेक शताब्दियाँ लगेंगी। अमेरिका में स्वामीजी को तूफानी साधु (साईक्लोनिक मोंक) का नाम दिया गया था। तूफान जैसे क्षण भर आकर ही सब कुछ अस्त-व्यस्त कर चला जाता है। उसी प्रकार उन्होंने भी उस देश में पलक झपकते ही प्रलय-काण्ड मचा दिया था। नेपोलियन की वीरगाथा हम जानते हैं, अलेक्जेन्डर की दिग्विजय की कहानी भी हम जानते हैं परंतु स्वामीजी की वीरता उससे भी महत्तर है एवं उनकी दिग्विजय और भी गौरव पूर्ण है। शीघ्र ही एक ऐसा समय भी आयेगा जब हम यह समझ सकेंगे कि प्रेम के विश्वजनीन तत्व के सहारे ही वे दिग्विजय प्राप्त कर सके थे।

स्वामीजी यदि जगत् की किसी वस्तु से घृणा करते थे तो वह थी दुर्बलता एवं भय। स्वामीजी के वचनों एवं उपदेशों में सूर्य का तेज, विद्युत की शक्ति, राजा जैसा शासन एवं जननी का विश्व-विजयी प्रेम हुआ करता था। विवेकानन्द की वाणी शक्ति की वाणी है। भय एवं दुर्बलता को वहाँ स्थान नहीं है। विवेकानन्द के कथनों में सुप्त व्यक्ति को जगाने की, मुर्दों को जिलाने की, अन्धों को दिखाने कीतथा कायर को वीर बनाने की शक्ति है। जिनके अन्दर अपनी, समाज की एवं देश की उन्नति की चाह है, विवेकानन्द की वाणी उनके समक्ष अमृत के सदृश है।

भय-दुर्बलता कायरता का युग समाप्त हो गया है। नवीन तरुणों का दल नव उत्साह, नव-प्राण एवं नव-आशा के साथ आज जाग उठा है। विश्व विजयी विवेकानन्द की नूतन छवि जननी की गोद में पल्लवित होकर देश का मुख उज्ज्वल करें। स्वर्ग से भी बड़ी, स्वर्ग से भी प्रिय, हमारी जननी-जन्मभूमि के मुख पर आनन्द एवं गौरव की मुस्कान फैलेगी, महानिशा का अवसान होगा एवं हमारी जन्मभूमि का आकाश नवीन उषा के अरुण आलोक में प्रकाशित हो उठेगा। ●

विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार— स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक —डॉ० आशीष बनर्जी

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्
कोशो ममाहमिति वस्तु विकल्प हेतुः।
संज्ञादि भेदकलनाकलितो बलीयां
स्तत्पूर्वकोशमभिपूर्य विजृम्भते यः।। १६७ ।।

पंचज्ञानेन्द्रिय एवं मन मिलकर मनोमय-कोश बनाती हैं। 'मैं' और 'मेरा' इत्यादि नानाविध वस्तुएँ कल्पना का कारण एवं नामरूप-क्रियादि विविध भेद के सहित वर्तमान एवं बलवान यह मनोमय कोश इससे पूर्ववर्ती प्राणमय कोश को व्याप्त करके स्थित है।

देह की समस्त चेष्टाएँ प्राण के अधीन होने के कारण देह की अपेक्षा प्राण बलवान है। पुनः प्राण की क्रियाएँ मन के संकल्पों पर निर्भर होने के कारण मनोमय कोश बलिष्ठ है। इस विषय में श्रुति प्रमाण है:—'तस्मात् वा एतस्मात् प्राणमयात् अन्योहन्तरः आत्मा मनोमयः तेनैष पूर्णः।' तै०उ, २/३—'उक्त प्राणमय कोश से भिन्न तथा उसके अन्दर मनोमय आत्मा (कोश) है। इस मनोमय के द्वारा प्राणमय पूर्ण है।'

ज्ञानेन्द्रिय समूह मस्तिष्क में रहकर दृश्यमान चक्षुकर्ण आदि में क्रियाशील होता है।

मनोमय कोश के कार्य का वर्णन :—

पञ्चेन्द्रियैः पञ्चभिरेव होतृभिः
प्रचीयमानो विषयाज्यधारया।
जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनै —
र्मनोमयाग्निर्दहति प्रपञ्चम् ।।१६८ ।।

पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप पाँच आहुति प्रदानकारी के द्वारा बहु वासना रूप काष्ठराशि की सहायता से प्रज्ज्वलित एवं विषय रूप घृताहुति द्वारा संवर्धित मनोमय कोश रूप अग्नि जीव का जन्मकर्ममय इस संसार रूप फल प्रदान का कारण होता है ।।१६८।।

एक रूपक की सहायता से मनोमय कोश की क्रियाओं का वर्णन किया गया है। यज्ञाग्नि यजमान द्वारा दिये गये काष्ठ ईंधन द्वारा प्रज्वलित एवं घृताहुति द्वारा वृद्धिप्राप्त होकर 'अपूर्व' नामक फल की उत्पत्ति करता है एवं सृष्टि प्रवाह को बनाए रखता है। मनोमय कोश-रूप अग्नि भी देहान्त काल में उत्पन्न स्मृति द्वारा जीव के जन्म प्रवाह का कारण होता है। जीव इस लोक में मन के द्वारा विषय समूह का अनुभव एवं विषय सुख भोग करता है।

कर्मेन्द्रिय समूह ज्ञानेन्द्रिय समूह द्वारा परिचालित होता है। अतः इस श्लोक में विषय भोग के बारे में ज्ञानेन्द्रियों का कर्तृत्व वर्णन हुआ।

न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता
मनो ह्यविद्या भवबन्धहेतुः।
तस्मिन्विनष्टे सकलं विनष्टं
विजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते ।१६९।।

मन के अतिरिक्त अविद्या नहीं है; मन ही संसार बंधन का हेतु अविद्या है। मन का नाश होने पर सभी संसार बन्धन नष्ट हो जाते हैं; और मन के प्रकाशित होने पर समस्त संसार प्रकाशित हो जाता है। १६९

संकल्प त्याग के फल स्वरूप मन का नाश होता है। मनोविकार के उत्पत्ति द्वारा अविद्या जीव के संसार बंधन का कारण होता है।

यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि अविद्या जगत् का उपादान है; और आलोच्यमान श्लोक में मन को ही अविद्या कहा गया है। तब तो सुषुप्ति में जब मन का नाश हो जाता है तब जगत नष्ट क्यों नहीं हो जाता ? परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है। सुषुप्त व्यक्ति के जगत् ज्ञान का अभाव होने पर भी अन्य जाग्रत व्यक्ति के निकट जगत प्रकाशित रहता है।

उक्त आपत्ति के उत्तर में कहा जा सकता है कि जिसका मन प्रकाशित होता है वही व्यक्ति जगत देखता है।

आत्मा नित्य, शुद्ध एवं पूर्ण है ; उसका कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। अविद्या के प्रभाव के कारण आत्मा परिवर्तन शील प्रतीत होता है। साधना द्वारा मन से अविद्या का आवरण हटने पर आत्मा स्वस्वरूप में प्रकाशित होता है। (क्रमशः)

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	३,६६० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० वी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	---	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	एक भक्तिगती महिला	—	इलाहाबाद	१०१० रुपये
१८.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१९.	श्री गोपाल श० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये

छपरा के महान सन्त

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

बलराम मन्दिर में एक दिन बिहारीबाबू ने उनसे पूछा—"महाराज ! आप तो कहते हैं कि शक्ति का अन्त नहीं है, साधना का अन्त नहीं है, अनुभूति का अन्त नहीं है, आत्मा की इति नहीं है; तो फिर शास्त्र में जो मुक्ति की बात कही गयी है, वह क्या है ?"

इस प्रश्न के उत्तर में लाटू महाराज ने जो कुछ कहा था, अब हम वही उद्धृत करते हैं—"आप लोग मुक्ति का अर्थ समझते हैं—छुटकारा पाना; परन्तु साधना पथ में मुक्ति का अर्थ छुटकारा पाना नहीं बल्कि विलीन हो जाना है। जैसे नदी का जल सागर के जल में मिल जाता है, वैसे ही साधक के भीतर की आत्मा आत्मा के सागर में मिल जाती है। एक वाक्य में कहें तो साधक तब अपने आपको आत्मा के सागर में खोकर मुक्ति पा जाता है। परन्तु क्या आप सोचते हैं कि खो जाने से ही साधना का भी अन्त हो जाता है ? भगवान की लीला ऐसी है कि विलीन हो जाने पर भी छुटकारा नहीं है। तब फिर से खोज निकालने की साधना करनी पड़ती है। जैसे नदी का जल समुद्र में मिल जाने से ही उसके कर्मचक्र का अन्त नहीं हो जाता, उसे पुनः मेघ बनकर आकाश में उड़ जाने के कार्य में लगना पड़ता है। वैसे ही यहाँ भी है। परन्तु साधना का ऐसा ही मजा है कि एक बार साधक को उसे खोजकर पाने की साधना करनी पड़ती है और उसके बाद फिर उसे विलीन हो जाने की साधना करनी पड़ती है। इसीलिए ऐसा समझिए की साधना का अन्त कहीं भी नहीं है। साधना का यदि अन्त न रहे, तो फिर शक्ति का भी कहीं अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि शक्ति के अभाव में साधना चलेगी कैसे ? अब प्रश्न उठता है—'किसकी साधना ? किसकी शक्ति ?'—सब आत्मा की ही साधना है—आत्मा की ही शक्ति है, इसलिए आत्मा की भी इति नहीं है, ऐसा समझिए !"

उस दिन बिहारी बाबू ने एक और भी प्रश्न किया था—"महाराज ! यदि साधना की यही प्रक्रिया हो, तो फिर स्वयं को विलीन करने की भी क्या आवश्यकता है और खोकर (स्वयं को) पुनः ढूँढ़ने की भी क्या जरूरत है ?"

इसके उत्तर में लाटू महाराज ने कहा—"भगवान की लीला का ऐसा ही खेल चलता रहता है। ढाई को छूना भी है और ढाई को छूकर फिर खेलना भी है। समझ लीजिए कि इस खेल में वे ही सारी भुमिकाएँ कर रहे हैं—वे ही जीव होकर साधना कर रहे हैं, मुक्त हो रहे हैं और पुनः लीला के लिए आकर कार्य कर रहे हैं। यह सब अचिन्त्य व्यापार है ! उनके समझाये बिना किसी में समझने की क्षमता नहीं।"

इन बातों से यह समझ में आ जाता है कि लाटू महाराज की साधना की धारा किस ओर जा रही थी। वे केवल ब्रह्मसागर में विलीन न होकर,

ब्रह्मलीला का भी आस्वादन करना चाहते थे। इस कारण उनकी साधना में दो भाव दीख पड़ते हैं। एक भाव की चरमावस्था में वे स्तब्ध हो जाते हैं मानो स्वयं को खो बैठते हैं और दूसरे भाव की चरमावस्था में वे मानो एक सदा हास्यमय, आनन्दविभोर शिशु बन जाते हैं। एक भाव की साधना में उन्हें उपलब्धि हुई थी कि 'ब्रह्म को छोड़ सब कुछ अवस्तु है' और दूसरे भाव की साधना में उन्होंने देखा कि 'वे ही सब कुछ हुए हैं'। यही कारण है कि उनके उपदेश में दोनों ही भाव की बातें हैं।

श्रीयुत महेन्द्रनाथ दत्त ने अपने तपस्वी-लाटू के संस्मरण में लिखा है—"कई वर्ष के लिए लाटू की एक ऐसी अवस्था हुई थी, जबकि वह जगत् में रहकर भी जगत् से सम्पर्करहित था। वह किसी के साथ भी तब पूर्ववत् मेल-जोल नहीं रख पाता था। (प्रायः) निश्चल होकर बैठा रहता था। उसकी मनोवृत्ति प्रचलित पथ पर नहीं चलती थी। सभी विषयों में उसका हाँ भी ठीक है, नहीं भी ठीक है—ऐसा भाव था।... जगत् में किसी के प्रति भी उसका घृणा, अरुचि या तुच्छता का भाव नहीं था। किसी पर उसकी आसक्ति, अनुराग अथवा प्रीति भी न थी। न तो वह किसी को अभिशाप देता था और न ही किसी को आशीर्वाद करता था। एक वाक्य में कहें तो उसके लिए जगत् न तो ग्राह्य था और न ही त्याज्य था।... उस समय जगत् उसके लिए मानो एक भ्राम्यमान चक्र था—चक्र के भीतर की प्रत्येक वस्तु उसकी निगाह के सामने आती थी, पर किसी पर भी उसका मनोयोग न था। एक शब्द में तब वह 'स्तब्ध' था।"

श्रीयुत नवगोपाल घोष ने भी लाटू महाराज की एक अवस्था का वर्णन किया था, जो इस प्रकार है—"एक समय लाटू महाराज हमारे घर आया करते थे। उन दिनों उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो वे इस पृथिवी पर से समस्त लेनदेन समाप्त करके बैठे हुए हैं। उस काल में उनकी अपनी कोई भी कामना नहीं थी या फिर किसी के प्रति कोई कर्तव्य का भाव भी नहीं था। उस समय उन्हें न तो आहार में कोई रुचिबोध था और न ही अनाहार में दुःखबोध था। देखते ही प्रतीत होता मानो वे पूर्णरूपेण आप्तकाम हों।"

१८९३ ई० में गिरीशबाबू ने किसी को कहा था—"गीता का साधु देखना चाहते हो तो लाटू को देखो।" उन सज्जन को ठीक ज्ञात न था कि गीता के साधु का क्या मतलब है। इसीलिए उन्होंने गिरीशबाबू से पूछा—"इसका क्या अर्थ है?" उत्तर मिला "ओह! लगता है तुमने गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक नहीं पढ़े हैं। वहाँ पर स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण बताये गये हैं उसके साथ लाटू का हूबहू मिल जाता है।" यह कहकर उन्होंने गीता के उन श्लोकों की व्याख्या करके उन्हें समझा दिया। (श्रीयुत अविनाशचन्द्र गंगोपाध्याय से श्रुत)।

१८९३-९४ ई० में किसी समय एक भक्त ने जो कुछ देखा था उसे साधु सिद्धानन्द ने उद्बोधन (मासिक) में प्रकाशित किया है। बिहारी बाबू ने भी 'वसुमती' में प्रकाशित अपने लेख में उसका उल्लेख किया है। साधु सिद्धानन्द ने लिखा है—"किसी भक्त ने बताया कि उन दिनों वे गमछे के छोर में चने बाँधकर उसे गंगा के जल में डुबोकर बैठे रहते थे। यह सोचकर की चने फूल जाने पर खाऊँगा। एक दिन उन्होंने गमछे में बँधे हुए चने गंगाजी में रखकर उसे एक ईंट से दबा दिया। उस समय भाटा चल रहा था। इस बीच ज्वार आ गया, पर उस ओर उनका ख्याल ही नहीं था। वे अपने भाव में डूबे बैठे थे। जब ख्याल आया तो उन्होंने देखा कि ज्वार का पानी ऊपर तक चढ़ आया है। चने और उसके साथ गमछा हैं या बह गये, पता नहीं। और कोई चारा न देख वे वहीं

बैठे रहे। ज्वार उतर जाने पर उन्होंने देखा कि चीज जहाँ रखी थी, वहीं पड़ी है। तब वे उसे निकाल कर खाने लगे।"

निम्नलिखित घटना* से भी उनके ध्यान के गाम्भीर्य का पता चलता है। यह प्रसंग उन्हीं के मुख से सुनने में आया है—"एक दिन बागबाजार में मैं एक पुआल से लदी नाव में बैठा था। नाव कब चल पड़ी, मुझे पता ही नहीं चला और माँझी लोगों ने भी मुझे देखा नहीं। नाव चलते-चलते जब दक्षिणेश्वर पार कर गयी, तब जाकर मुझे होश आया। मैंने माँझियों से उतार देने को कहा। तब माँझियों ने मुझे उतार दिया। लौटते समय उस दिन दक्षिणेश्वर भी देखता आया। रामलाल ने बड़े प्रेम के साथ खिलाया।"

इसी प्रकार की एक और भी घटना है और यह भी गंगातट पर निवासकाल में ही घटी थी। एक भक्त से उन्होंने कहा था—"दोपहर को श्मशानेश्वर के पास वाले घाट पर बैठा रहता था और रात को ग्यारह-बारह बजे द्वारमण्डप की छत पर चला जाता था। वहीं बैठकर जप-ध्यान करता था।"

भक्त—"वर्षा होने पर क्या करते थे, महाराज ?"

लाटू महाराज—"क्यों ? घाट के पास ही तो रेल लाइन दीख रही है। वहाँ पर अनेक रेल-गाड़ियाँ खड़ी रहती थीं। उन्हीं में से एक के खाली डिब्बे में चढ़कर बैठ जाता था। वर्षा थम जाने पर फिर लौट आता था। एक बार तो मैं मालगाड़ी में बैठकर उतरना भूल गया। कब ईंजन आकर गाड़ी को खींच ले गया यह मैं जान ही नहीं सका। अगले दिन मैंने देखा कि बहुत से कुली आकर मुझे गाड़ी से उतरकर चले जाने को कह रहे हैं। उनसे पूछने पर पता चला कि गाड़ी चितपुर आ पहुँची है। अब मैं क्या करूँ ? वहाँ से पैदल चलकर मैं बाग बाजार के घाट पर आया। इसके बाद से वर्षा होने पर भी मैं गाड़ी में नहीं चढ़ता था, छत से उतरकर घाट के एक कोने में बैठा रहता था। घाट का पहरेदार भी मुझे पहचान गया था, अतः कुछ कहता नहीं था।"

श्रीयुत् महेन्द्रनाथ दत्त से हमने सुना है—"लाटू का स्तब्धभाव करीब ढाई वर्ष तक रहा। इसके बाद ही लाटू को महाशक्तिपूर्ण अवस्था की उपलब्धि हुई। उसकी बातचीत में गम्भीरता और मधुरता आ गयी। अपनी टूटी-फूटी (हिन्दी-बंगला मिश्रित) भाषा में वह अनेक नये तत्त्व बोलने लगा। विविध भावों की विविध उदात्त बातें उसके मुख से निःसृत होने लगी।"

ऐसा लगता है कि ठाकुर के देहत्याग के कोई सात-आठ वर्ष बाद वे पुनः समाधिस्थ हुए थे। उनकी अपनी ही बातों से ऐसा अनुमान होता है। एक बार उन्होंने एक भक्त से कहा था— "साधक को एक बार समाधि लग जाने से उसे बार-बार समाधि होगी ऐसी बात नहीं है। ऐसे अनेक साधक हैं जिन्हें जीवन में केवल एक बार समाधि का आस्वादन मिला है। फिर ऐसे भी साधक हैं जो जीवन भर समाधि तक नहीं पहुँच सके। मेरे ऊपर उनकी असीम कृपा है, इसीलिए सात-आठ वर्ष परिश्रम करा कर उन्होंने मुझे फिर उसी अवस्था में पहुँचा दिया था। एक दिन मैं गंगा के किनारे बैठा हुआ था। मैंने देखा—गंगा से एक ज्योति निकली और उस ज्योति ने बढ़ते-बढ़ते धरती-आकाश सब कुछ को व्याप्त कर लिया। फिर उस ज्योति में मैंने असंख्य ज्योति देखे। उसके बाद मैं स्वयं को खो बैठा। तब क्या हुआ मैं कुछ भी समझ नहीं पाया। परन्तु उस राज्य से लौटने पर मैं बड़े आनन्द में रहा। इतना आनन्द कि बस क्या कहूँ ! दिल का बोझ न जाने कहाँ चला गया। देखा—सब कुछ आनन्दमय हो रहा है।" (क्रमशः)

---

* ठीक पता नहीं कि यह किस काल की घटना है, तथापि यह उनके गंगातट पर निवासकाल में घटी थी। इस कारण हमारा अनुमान है कि यह १८९३-९६ ई० के दौरान की घटना है।

धार्मिक सहिष्णुता और श्रीरामकृष्णदेव

ब्रह्मचारी गौरी शंकर
रामकृष्ण मठ, नागपुर

...निक एवं आर्थिक विकास के बल पर ...युग का बाहरी स्वरूप काफी बदल चुका ... मनुष्य का अन्तःकरण आज भी कई ...के द्वन्द्वों से उलझा हुआ है। सामाजिक ...एवं असंतुलन का यह एक सबसे बड़ा ...है। मन और आचरण की पवित्रता के लिए ...ही सहारा लेना पड़ेगा। धर्म के नाम पर ...में धर्मान्धता अधिक व्याप्त है। मनुष्य को ...खतरा अन्धविश्वास से नहीं होता उससे ...हानि धर्मान्धता से होती है। साम्प्रदायिक ...से लेकर बड़े-बड़े युद्ध धर्म की आड़ में ...हैं।

...धर्म के मर्म को प्रदर्शित करने के लिए वर्तमान ... में जो शक्ति धरातल पर अवतरित हुई है, ...उका नाम है श्रीरामकृष्णदेव। धर्मान्धता के गहन ...म में मनुष्य को कीड़े की भाँति बिलबिलाते ...ख कर उनका हृदय पिघल उठा। उन्होंने विश्व-इतिहास में पहली बार कई कठोर साधनाओं के आधार पर धर्म द्वारा अंकित सीमा रेखाओं को पार किया और अपने जीवन के अनेकानेक दृष्टान्तों से यह स्पष्ट किया कि सभी धर्मों का मर्म है—सच्चा प्रेम। ईश्वर के प्रति प्रेम मानवता के प्रति प्रेम। जो मानव का सच्चा प्रेमी होगा वही ईश्वर का प्रेमी हो सकता है। मानव से घृणा कर ईश्वर के प्रति प्रेम-प्रदर्शन धर्मान्धता के पाप से हट कर और कुछ अलग नहीं हो सकता। प्रेम ईश्वर की तरह सीमाहीन एवं अन्तहीन होता है। उसे किसी काल, सीमा या कारण से बाँधा नहीं जा सकता।

पूर्ण पवित्रता एवं सच्ची साधना के आधार पर श्रीरामकृष्णदेव ने यह दिखला दिया कि प्रेम की कोई भौतिक परिभाषा नहीं, कोई परिसीमा नहीं, प्रेम ही धार्मिक सहिष्णुता का मूल आधार है। प्रेम के कारण ईश्वर को भी मनुष्य का रूप धारण करना पड़ता है। प्रेम की कोई जाति, रंग या राष्ट्रीयता नहीं होती है।

एक सच्चा धार्मिक मानव जब ज्ञान-सागर में गोता लगाता है तो फिर कभी धर्मान्धता के अन्धकूप में नहीं आ सकता। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि का भेद तभी तक रहता है जब तक कोई धर्म के रस का रसास्वादन नहीं कर लेता। इसका ज्वलन्त उदाहरण श्रीरामकृष्णदेव के व्यावहारिक जीवन में मिलता है। मन्मथनाथ घोषजी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि उन्होंने एक दिन देखा कि गरतला मस्जिद, कलकत्ता, में एक फकीर शाम में जोर-जोर से इस तरह प्रार्थना कर रहा था, "हे प्रभो, तुम आओ; हे प्रिय, दया कर तुम आओ. उसकी प्रार्थना में इतनी गहरी अन्तरिकता थी कि उसकी आंखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। इसी समय श्रीरामकृष्णदेव काली घाट से लौटते समय उधर से निकले। एकाएक उन्होंने गाड़ी रुकवायी और नीचे उतरकर दौड़ते हुए फकीर की ओर आये। दोनों एक दूसरे से गले मिलकर प्रेमाश्रु बहाने लगे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सभी दंग रह गये।

विश्व-बन्धुत्व, धार्मिक सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है। महापुरूषों द्वारा हर कार्य ही दूसरों के लिए अनुकरणीय होता है। एक सच्चे भक्त के हृदय से निकलने वाली प्रेम-सरिता सारे विश्व को प्लावित कर सकती है। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति एक कीड़े को भी घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। युगावतार श्रीरामकृष्णदेव में जिसने जिस भाव को व्यक्त करना चाहा उसे उसी भाव का उनमें दर्शन

हुआ। भिन्न-भिन्न धर्मों के लोगों ने उनका सान्निध्य पाकर अपने-आप को धन्य बना लिया। धर्म के व्यापक समन्वय का उन्होंने एक नया युग आरम्भ किया। मनीन्द्र कृष्ण गुप्तजी ने एक बड़ा ही रोचक संस्मरण लिखा है। एक दिन एक ईसाई संन्यासी आया। उसने श्रीरामकृष्णदेव को प्रभु यीशु के रूप में पूजा था। उनको अपना आराध्यदेव मान कर साधना की थी। उसकी भावना से विह्वल होकर श्रीरामकृष्ण देव खड़े होकर समाधिस्थ हो गये। उस अवस्था में उनके दोनों हाथ प्रभु यीशु के हाथों की तरह उठ गये। ईसाई संन्यासी भावमग्न हो गया। बाद में उसने बतलाया कि श्रीरामकृष्णदेव के रूप में उसने प्रभु यीशु का दर्शन किया है।

इस प्रकार विभिन्न मतावलम्बियों ने श्रीरामकृष्ण देव को केन्द्र बना कर एक अद्भुत धार्मिक सहिष्णुता का नया युग आरम्भ किया। नये युग के मानवता को नयी दिशा प्रदान करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने नया आदर्श रखा। वह आदर्श है सर्वधर्म प्रेम। धार्मिक होने का अर्थ प्रेम की सार्वभौमिकता को प्राप्त करना है, जिसके अनुकरण से मानव मानव के प्रति व्याप्त घृणा और भय का सारा भाव समाप्त हो सकता है। मानवता के लिए व्यापक शक्ति के नये युग का दिवाकर उदित हो सकता है, धार्मिक सहिष्णुता का शाश्वत संदेश सम्पूर्ण मानवता में संचारित हो सकता है।

८ मार्च, १९९१ को आयोजित जनसभा में प्रस्तुत

रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद का संक्षिप्त प्रतिवेदन

प्रयाग के इस रामकृष्ण मठ की स्थापना पूज्यपाद स्वामी विज्ञानानन्द महाराज ने की थी जो की रामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्यों में से एक थे। स्वामी विवेकानन्दजी की इच्छानुसार उन्होंने सन् १९०० ई० में इलाहाबाद को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। स्वामीजी उन्हें 'इलाहाबाद का मठाध्यक्ष' कहकर पुकारते थे। १० वर्षों तक ब्रह्मवादिन क्लब के किराये के मकान में रहे तथा ध्यान, धर्म, स्वाध्याय और कठोर तपस्या का जीवन बिताते रहे। सन् १९१० में उन्होंने आश्रम की वर्तमान भूमिखंड खरीदकर वहाँ आश्रम का निर्माण कराया। बाद में सड़क के उस पार की जमीन जहाँ अभी वर्तमान धर्मार्थ चिकित्सालय है उसे खरीदकर होमियोपैथिक चिकित्सालय की शुरुआत की।

स्वामी विज्ञानानन्दजी ने यहाँ लम्बे २८ वर्षों तक निवासकर कठोर साधना और तपस्या का जीवन बिताया। यहाँ तक कि जब वे रामकृष्ण मठ और मिशन के परमाध्यक्ष हो गये थे तब भी वे यहीं निवास करते रहे और यहीं उन्होंने महासमाधि प्राप्त की। फलस्वरूप यह स्थल एक पवित्र तीर्थ हो गया है। चतुर्दिक के कोलाहल के बावजूद यहाँ जिस शान्तिपूर्ण वातावरण की अनुभूति होती है वह पूज्यपाद स्वामी विज्ञानानन्दजी की दीर्घकालीन उपस्थिति के फलस्वरूप है। उन्होंने जिस सेवाकार्य के बीज का वपन किया था वह एक सुदृढ़ वृक्ष के रूप में परिणत हो गया है तथा धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यकलापों के साथ समाज सेवा और चिकित्सा के क्षेत्र में निम्न प्रकार से अपनी सेवाएँ अर्पित कर रहा है।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम—मन्दिर में नियमित रूप से प्रातः एवं सायंकाल सामूहिक प्रार्थना होती है। प्रत्येक एकादशी को सांध्य आरती के पश्चात् श्रीरामनाम संकीर्तन तथा प्रत्येक पूर्णिमा को श्री श्यामनाम संकीर्तन और अमावस्या को श्रीमाँ नाम संकीर्तन का आयोजन होता है। मठ के अध्यक्ष के द्वारा प्रत्येक शनिवार को सायंकाल ५.३० बजे 'श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग' पर प्रवचन होता है। इनके अतिरिक्त गुरु पूर्णिमा, जन्माष्टमी, दुर्गापूजा तथा भगवान श्रीरामकृष्णदेव, माँसारदा देवी और स्वामी विवेकानन्दजी और स्वामी विज्ञानानन्दजी आदि की जयन्तियाँ सोल्लास मनायी जाती हैं।

ग्रंथालय तथा वाचनालय— आश्रम के ग्रंथालय में विभिन्न विषयों पर २३, ९३२ पुस्तकें हैं। इसके गतवर्ष
१२२४ पुस्तकें सदस्यों के बीच निर्गमित की गयी। कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकते हैं। वाचनालय में ८३
पत्रिकाएं आती हैं।

धर्मार्थ चिकित्सालय (एलोपैथी)—यह विभाग प्रतिदिन (छुट्टियों को छोड़कर) सुबह ८ बजे से ११·३० बजे
तक कार्य करता है। इसमें पैथालजिक लेबोरेटरी, इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी आदि की व्यवस्था है। बच्चों को चेचक,
पोलियो तथा ट्रिपल एण्टीजिन के टीके भी लगाये जाते हैं। इसके चिकित्सक हैं—डॉ० अनिल अग्रवाल, तथा डॉ० के०
के० मुकर्जी। निःशुल्क मानसेवी के रूप में डॉ० विमल चन्द्र मजूमदार तथा डॉ० (श्रीमती) मीनाक्षी गुप्त यहां पर
अपनी सेवाएं दे रहे हैं। इनके अतिरिक्त नगर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० बी० एल० अग्रवाल प्रत्येक गुरुवार
को ३ से ४ बजे तक, स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉ० रमा मिश्र प्रत्येक सोमवार को, शिशु रोग विशेषज्ञ डॉ० बी० के०
अग्रवाल तथा नेत्र विशेषज्ञ डॉ० ए० के० भारद्वाज प्रति शुक्रवार को अपनी निःशुल्क सेवा प्रदान कर रहे हैं। पिछले
वर्ष १ अप्रैल १९८९ से ३१ मार्च १९९० तक एलोपैथी विभाग में १, १६,८३६ रोगियों की चिकित्सा की गयी।

होमियोपैथी विभाग—यह विभाग भी सुबह ८ से ११·३० बजे तक कार्य करता है। इस विभाग के चिकित्सक
हैं डॉ० एम० के० बोस तथा डॉ० तापस मुकर्जी। इनके अतिरिक्त नगर के सुप्रसिद्ध होमियोपैथ डॉ० एन० एम० सिंह
प्रति सोमवार तथा गुरुवार अपनी निःशुल्क सेवाएं प्रदान करते हैं। पिछले वर्ष होमियोपैथी विभाग में १६, ५३९
रोगियों की चिकित्सा की गयी।

माघ मेला कैंप—प्रति वर्ष त्रिवेणी संगम में आश्रम के द्वारा माघ मेले के समय सेवा कैंप का आयोजन किया
जाता है जिसमें यात्रियों तथा कल्पवासियों को निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था रहती है। पिछले वर्ष माघ मेला में
कुल १२, ५०० तथा इस वर्ष १७, २४८ रोगियों की चिकित्सा की गयी। डॉ० विमल चन्द्र मजूमदार तथा डॉ०
बसन्त देसाई की निःशुल्क सेवा के फलस्वरूप ही यह सेवाकार्य सम्पन्न हो पाया।

इन कार्यों के अतिरिक्त कुछ धर्मादा स्थायी कोष (इनडाउमेंट) भी निर्मित किये गये हैं। १ लाख रु० की
राशि से निर्मित — अहूजा इनडाउमेंट—के ब्याज से ४० गरीब बच्चों को प्रतिदिन दूध और बिस्कुट दिया जाता है।
तथा प्रतिभावान् छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। पिछले वर्ष कुल २५ छात्रों को छात्रवृत्ति दी गयी थी।

६०, १०० की राशि से निर्मित 'मित्रा सेवा संघ इनडाउमेंट' ब्याज से जो राशि प्राप्त होती है वह
चिकित्सालय के कार्यों में व्यय की जाती है।

१६, ५००, की राशि से 'ज्ञान भवन इनडाउमेंट' निर्मित की गयी है जिसके ब्याज से प्राप्त राशि पाठावृत्ति
आदि विभिन्न प्रतियोगिताओं के पुरस्कार में व्यय होती है।

हमारी भावी योजनाएं – माघ मेला के सेवा कैंप के संचालन में हमें बड़ी धन राशि की आवश्यकता पड़ रही
है। प्रत्येक वर्ष रोगियों की संख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप औषधि आदि पर व्यय बढ़ गया है। इस हेतु हमने
१० लाख रु० का इनडाउमेंट बनाने का निश्चय किया है। अब तक इसके लिए १ लाख ८९ हजार रु० प्राप्त हुए
हैं। आशा है आप सबके सहयोग से यह कार्य भी पूर्णता को प्राप्त होगा। अपने प्रियजनों की स्मृति में आप यह
इनडाउमेंट निर्मित कर सकते हैं।

इस पुनीत अवसर पर मैं समस्त सेवाभावी चिकित्सकों, दानदाताओं तथा हितैषियों को जिन्होंने आश्रम एवं
मठ के सेवाकार्यों में अपना योगदान दिया है, मैं आप सबकी ओर से तथा आश्रम की प्रबन्ध समिति सदस्यों की ओर
से आभार प्रदर्शित करता हूँ।

बिहार रामकृष्ण विवेकानन्द परिषद् का अधिवेशन

मुजफ्फरपुर, ६ अप्रैल। बिहार रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव प्रचार परिषद् का वार्षिक अधिवेशन, रा
विवेकानन्द सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर में ६ से ८ अप्रैल तक उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ। ६ अप्रैल को वैदिक मं
के उपरान्त आतिथेय आश्रम के सचिव स्वामी प्रबुद्धानन्द के स्वागत भाषण के साथ अधिवेशन का श्रीग
जिसका उद्घाटन किया रामकृष्ण मठ, जामतारा के अध्यक्ष स्वामी लोकनाथानन्दजी ने। उन्होंने रामकृ
उपमा पूत गंगा से दी और कहा कि वही गंगा हमें ब्रह्मानन्द सागर से मिला सकती है। फिर १० मिनटों
साधना हुई। रामकृष्ण विद्यापीठ, देवघर के स्वामी निर्लेपानन्द ने वचनामृत पर प्रवचन देते हुए कहा कि
के समुद्र मंथन से पहले हमारे संस्कार के विष निकलते हैं पीछे आनन्द का अमृत। गो मुखी से गंगा श
निकलकर पीछे गंगासागर से मिलती है। वैसे ही मंत्र बिन्दु की साधना से गंगा बनाकर हमें आनन्द
जाना होगा। रामकृष्ण विद्यापीठ देवघर के सचिव बिहार भाव प्र० प० के अध्यक्ष स्वामी सुहितानन्दजी ने
की। द्वितीय सत्र में स्वामी लोकनाथानन्द ने माँसारदा की जीवनी के अंश का पाठ किया और स्वामी सुहि
ने गीता पर बड़ा ही प्रभावोत्पादक प्रवचन किया। उन्होंने कहा कि विषाद प्रभु से मिलाने का साधन है अतः
विषाद भी योग हो गया है। तृतीय सत्र का आरंभ स्वामी आत्मविदानन्दजी, सचिव, रामकृष्ण मिशन, र
भजन से हुआ। उन्होंने गृही भक्त कैसे रामकृष्ण संघ के कार्य कलाप में योगदान कर सकते है इस पर
भी दिया। ७ अप्रैल के अधिवेशन का उद्घाटन स्वामी सुहितानन्दजी ने किया, इसमें स्वतंत्र आश्रम का र
विवेकानन्द भाव प्रचार में योगदान विषय पर रामकृष्ण मठ और मिशन के महासचिव स्वामी महानन्द
व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तर डॉ० केदारनाथ लाभ ने प्रस्तुत किया तथा सदस्य आश्रमों ने अपने अपने
प्रतिवेदन प्रस्तुत किये।

८ अप्रैल को प्रभात फेरी निकाली गयी। जो बहुत आकर्षक थी युवा दिवस के रूप में इसे मनाया गया
युवक युवतियों ने बड़े अच्छे व्याख्यान, गीत, कविता-पाठ आदि प्रस्तुत किये। उन्हें पुरस्कार प्रदान किया बेलु
के ट्रस्टी स्वामी शिवमायानन्दजी महाराज ने। इस सत्र की अध्यक्षता की डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित ने
केदार नाथ लाभ ने अंतिम सत्र में विवेकानन्द और युवजन पर सारगर्भ व्याख्यान दिया। स्वामी आत्मविदान
डॉ० लाभ रचित श्रीरामकृष्ण चालीसा का सस्वर पाठकर लोगों को मुग्ध कर दिया। स्वामी शिवमाया
महाराज के अध्यक्षीय भाषण के उपरान्त अधिवेशन का समापन हुआ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम राँची में श्रीरामकृष्ण देव का जन्मोत्सव

गत १६ फरवरी १९९१ को भगवान् श्रीरामकृष्ण देव की १५६वीं जन्मतिथि, विशेष पूजा, भजन
तथा प्रसाद वितरण के साथ मनायी गयी।

इस अवसर पर अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी धार्मिक समारोहों का कार्यक्रम १६ से २७ फरवरी
तक आयोजित किया गया। १७ से २० फरवरी १९९१ तक आश्रम सभा गृह में श्री राजेश रामायणी (
उत्तर प्रदेश) द्वारा 'रामायण' पर प्रवचन किया गया। प्रवचन करने की उनकी शैली तथा उनके मधुर
श्रोतागण मुग्ध हो उठे। २२ से २४ फरवरी तक सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया, जिसमें
रुद्रात्मानन्दजी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर; स्वामी भागवतानन्दजी महाराज,
रामकृष्ण मिशन आश्रम, कटिहार एवं विदेश्वर गांगुली, ने विशिष्ट वक्ता के रूप में भाग लिया। दिनांक
२७ फरवरी, १९९१ तक श्री रामकृष्ण तथा माँशारदा के जीवन तथा आदर्शों पर आधारित आलेख्य-संगी
सुन्दर आयोजन किया गया।

ग्रामों में श्री रामकृष्ण देव का जन्मोत्सव

दिनांक १८ फरवरी १९९१ को भगवान श्रीरामकृष्णदेव का जन्मोत्सव राँची के ५५ ग्रामों में विवेक
सेवा संघों द्वारा मनाया गया। इसके अन्तर्गत प्रभात फेरी, साधारण रूप से पूजा, भजन, पाठ तथा आले
कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
सुनहरा अवसर ।
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
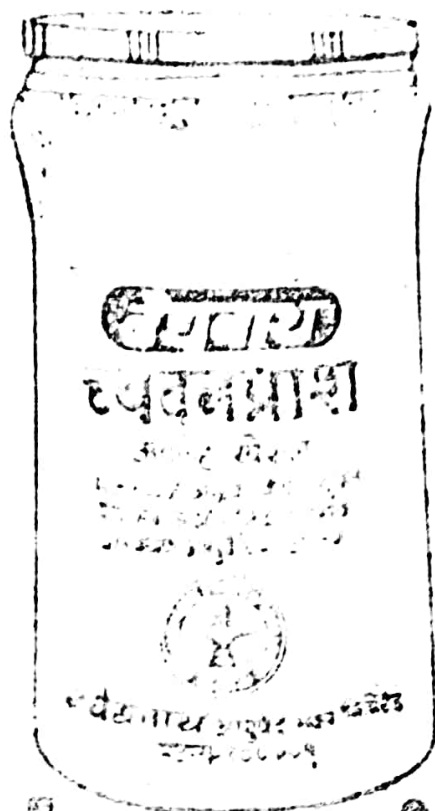
डाक पंजीयित संख्या – सी. एच. पी. – १४–८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२५.००
” (सस्ता संस्करण)	१०.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.००
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	५.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	६.००
विवेकानन्द– राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकान्त लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना – ४ में मुद्रित।